180

सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग

एक सौ अस्सीवीं रिपोर्ट

विषय

भारत के संविधान का अनुच्छेद 20(3) तथा मौन का अधिकार

मई, 2002

न्यायाधिपति
एम. जगन्नाथ राव
अध्यक्ष

सत्यमेव जयते

भारत का विधि आयोग
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली-110001
फोन : 3384475
फैक्स 3073864, 3388870
निवास
1, जनपथ,
नई दिल्ली -1100011
फोन : 3019465

सं. : 6 (3)(76)/2002—एल सी (एल एस)

प्रिय श्री अरुण जेटली जी,

इस पत्र के साथ भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) तथा अभियुक्त के मौन रहने के अधिकार विषय पर 180वीं रिपोर्ट भेज रहा हूं।

2. विधि आयोग ने उपरोक्त विषय को स्वप्रेरणा से उठाया है और उन कतिपय तथ्यों को ध्यान में रखते हुए उठाया है जिनके कारण पूछताछ के प्रक्रम पर और दण्ड विचारण कार्यवाहियों में अभियुक्त का मौन रहने का अधिकार यू. के. तथा अन्य देशों में क्षीण हुआ है। भारत में, स्वयं अपने विरुद्ध साक्षी होने के प्रतिषेध के अधिकार को संविधान के अनुच्छेद 20(3) में सम्मिलित किया गया है। इसके अतिरिक्त, मेनका गांधी बनाम भारत का संघ राज्य [1978(1) एस सी सी 248] के पश्चात, भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 की अपेक्षा है कि दाण्डिक मामलों में भेद भाव रहित न्यायोचित और साम्या पूर्ण प्रक्रिया अपनाई जाए। वर्तमान रिपोर्ट में, हाल ही में निर्णीत इंग्लिश और यूरोपीय न्यायालयों के मामलों तथा विभिन्न देशों में, जैसे, संयुक्त राज्य अमरीका, आस्ट्रेलिया, कनाड़ा, यू.के. और चीन में जो वर्तमान स्थिति है उसके आधार पर 'मौन के अधिकार' का विश्लेषण और तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। हमारी सिफारिश में इस बात पर बल दिया गया है कि अभियुक्त के मौन के अधिकार से संबंधित विधि में कोई परिवर्तन आवश्यक नहीं है। यह अधिकार संविधान के अनुच्छेद 20(3) और 21 द्वारा तथा दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 (2), 313(3) और 315 द्वारा सुरक्षित है। यदि उन परिवर्तनों को, जो यू.के. में किए गए हैं और जो आस्ट्रेलिया में प्रस्तावित हैं, यदि भारत में आरम्भ किया जाता है तो ऐसे परिवर्तन भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) और 21 की दृष्टि से अवैध होंगे। अतः, हमारी सिफारिश है कि विद्यमान 'मौन के अधिकार' को क्षीण करने की आवश्यकता नहीं है और न उसे क्षीण किया जा सकता है।

सादर,

भवदीय,

ह०

(न्यायाधिपति एम. जगन्नाथ राव)

श्री अरुण जेटली,
माननीय विधि, न्याय और कम्पनी कार्य मंत्री,
भारत सरकार,
शास्त्री भवन,
नई दिल्ली।

विषय-वस्तु

विषय-वस्तु	पृष्ठ सं०
भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) तथा मौन के अधिकार के विषय में रिपोर्ट	1—22

22 LJ &CA/05-2

भारत के संविधान के अनुच्छेद 20(3) तथा मौन के अधिकार के विषय में

रिपोर्ट

''इंग्लिश दाण्डिक विधि के समस्त ताने बाने में · · · एक स्वर्णिम धागा सदैव दिखाई देता है, अर्थात्, बंदी के अपराध को साबित करने का अभियोजन का दायित्व'' (वाई काउन्ट सांके के अनुसार)

(बूलमिंगटन बनाम डी पी पी, 1935 ए सी 462 पृ. 481 पर)

'मौन का अधिकार' कॉमन विधि का एक सिद्धांत है और इसका अर्थ है कि तथ्य पर विचार करने वाले सामान्य न्यायालयों अथवा अभिकरणों को, पक्षकारों द्वारा अथवा अभियोजकों द्वारा, यह निष्कर्ष निकालने के लिए आमंत्रित या प्रोत्साहित नहीं किया जाना चाहिए कि कोई संदिग्ध व्यक्ति या अभियुक्त केवल इसलिए दोषी है क्योंकि उसने पुलिस द्वारा या न्यायालय द्वारा उससे पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने से इंकार कर दिया है।

मौन के अधिकार का क्या स्रोत है यह पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं है किन्तु यह अधिकार इंग्लैंड में मध्य युग से चला आ रहा है। 16वीं शताब्दी के दौरान, स्टार चैम्बर तथा हाई कमीशन इंग्लिश न्यायालयों ने संदिग्ध व्यक्तियों को इस बात के लिए बाध्य करने की प्रणाली विकसित की थी कि वे एक शपथ लें, जो ''पदेन शपथ'' के नाम से ज्ञात थी, और अभियुक्त को न्यायाधीश तथा अभियोजक द्वारा, औपचारिक आरोप लगाए बिना भी, पूछे गए प्रश्नों का उत्तर देने के लिए बाध्य किया जाए। यदि कोई व्यक्ति शपथ लेने से इंकार करता था तो उसको यातना दी जा सकती थी। आगे चलकर इन स्टार चैम्बर व कमीशनों को समाप्त कर दिया गया। मौन का अधिकार स्वयं के विरुद्ध साक्षी होने के प्रतिषेध के विशेषाधिकार 'नेमो देवे प्रोडेरे इप्सम' के सिद्धांत पर आधारित है

विगमूर यह मानते हैं कि मौन का सिद्धांत कॉमन विधि में सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में लगभग आकस्मिक रूप से तब प्रवेश कर गया था जब स्टार चैम्बर और कमीशनों के राजनीतिक न्यायालयों का पतन हुआ था। एक बार यह अधिकार स्थापित हो जाने पर, अभियुक्त के इस अधिकार का विस्तार साक्षियों तथा अपराध के आरोपों तथा सिविल मुकदमेबाजी पर भी हो जाता था। बुड तथा क्रेफोर्ड ने यह तर्क दिया है कि यह प्रणाली अनिवार्य शपथ पर गवाही के कारण उत्पन्न हुए अतिव्यापी आक्रोश का परिणाम मानी जा सकती है। उनका मानना है कि यह अधिकार इंग्लैंड में उस समय से बहुत पूर्व लोक आन्दोलन के कारण स्थापित एक आधारभूत जनतांत्रिक अधिकार के रूप में उदित हुआ जिस समय के पूर्व वह न्यायिक विचारण का विषय नहीं बना था। मैग्वायर तथा लेवी ने एक दूसरा सिद्धांत प्रस्तुत किया है कि 'स्वयं के विरुद्ध साक्षी होने के प्रतिषेध के विशेषाधिकार का स्रोत मध्यकाल में इंग्लिश कॉमन विधि दण्ड प्रक्रिया में है। लेवी तथा मेग्वायर दोनों विगमूर से इस बात पर सहमत हैं कि यह अधिकार आगे चलकर दाण्डिक मामलों में साक्षियों पर तथा सिविल कार्यवाहियों में लगाए गए अपराध के आरोपों तक विस्तारित हो गया था। मैग्वायर का एक तीसरा दृष्टिकोण है कि उपरोक्त लेखकों ने ''गाड़ी को घोड़े के आगे'' रख दिया है। यह विशेषाधिकार रोमन कॉमन विधि से उदभूत हुआ था और सर्वप्रथम यह साक्षियों पर और सिविल कार्यवाहियों में अपराध के आरोपों पर लागू हुआ और उसके पश्चात् इसका विस्तार, दण्ड विधि में अभियुक्त पर हुआ। 1972 में दण्ड विधि पुनरीक्षण कमेटी (यू.के.) ने अपनी 11वीं रिपोर्ट में कहा था कि यह सिद्धांत 19वीं शताब्दी तक सामने नहीं आया था। '(द राइट टू साइलेंस—ए रिब्यू ऑफ द करेन्ट डिवेट' देखिए) (1990) खण्ड 53, माडर्न लॉ रिव्यू, पृष्ठ 709)।

16 वीं और 17वीं शताब्दियों में यह प्रकट होता है कि स्वयं के विरुद्ध साक्षी होने के प्रतिषेध का विशेषाधिकार मध्यकालीन स्वरूप के साथ गहराई से संबंधित था जिसका उपयोग धार्मिक असहिष्णुता के विरुद्ध बचाव में किया जाता था। इंग्लैण्ड में स्टार चैम्बर और हाई कमीशन जैसे विशेषाधिकार न्यायालय और धर्म विषयक न्यायालय पदेन शपथ का प्रयोग करते थे। इस प्रक्रिया में, सड़क चलते किसी व्यक्ति को भी पकड़ा जा सकता था और उसे शपथ लेने तथा ऐसे प्रश्नों का उत्तर देने के लिए बाध्य किया जा सकता था जिससे यह पता लग सके कि वे धर्म विषयक प्रश्नों पर क्या क्राउन से असहमत थे। हाऊस आफ कामन्स के एक आवेदन पर प्रीवी काउंसिल ने कोक तथा मुख्य न्यायाधिपति पोपहम से यह प्रश्न किया था कि शपथ उचित रूप से कब दिलाई जा सकती थी। उन्होंने उत्तर दिया कि "किसी व्यक्ति की परीक्षा उसके हृदय के गोपनीय विचारों के संबंध में नहीं की जाएगी" : "(एन ऑथ विफोर एन ऐग्जीजियास्टिकल जज एक्स-आफीसियो" 12 कोक रिपोर्ट 26 (तृतीय संस्करण, 1727)। लोंग पार्लियामेन्ट ने स्टार चैम्बर और हाई कमीशनों को उत्सादित कर दिया तथा धर्म विषयक न्यायालयों पर पदेन शपथ का प्रयोग करने पर पाबन्दी लगा दी। ("ओरिजिन आफ द प्रीवीलेज अगेन्स्ट सेल्फ इन्क्रीमीनेशन : लेखक आर. एच. हेमहाज़ 65, न्यू यार्क यूनिवर्सिटी ला रिव्यू 962 (1990); माइकल आर.टी. मेकनायर, "द अरली डेवलमेन्ट आफ द प्रीवीलेज अगेन्स्ट सेल्फ इन्क्रीमीनेशन" : 10 ऑक्सफोर्ड जनरल आफ लीगल स्टडीज, 66 (1966); इवेन माग्लन, टेकिंग द फिल्ट : रिकन्सीडरिंग द आरिजिन्स ऑफ द कान्स्टीट्यूशनल प्रीवीलेज अगेन्स्ट सेल्फ इन्क्रीमीनेशन" 92, माइकल एल. रैव 1086 (1994) देखिए (प्रोफेसर अखिल रीड अमर की पुस्तक') द कान्स्टीट्यूशन एण्ड क्रिमीनल प्रोसीजर, फर्स्ट प्रिंसिपल्स' 1999, येल यूनिवर्सिटी प्रेस, में पृष्ठ 216-217 पर उद्धृत) ।

मौन के अधिकार के विभिन्न पहलू हैं। प्रथम तो यह है कि अभियुक्त के दोष को साबित करने का भार राज्य पर अथवा विशेष रूप से अभियोजक पर है। दूसरा यह कि अभियुक्त को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक उसे दोषी सिद्ध नहीं कर दिया जाए। तृतीय पहलू, अभियुक्त का स्वयं के विरुद्ध साक्षी होने के प्रतिषेध का अधिकार है, अर्थात्, मौन रहने का अधिकार और उसे अपने विरुद्ध गवाही देने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। इस नियम के अपवाद भी हैं। अभियुक्त को, उसके चित्र लेने की, आवाज़ को रिकार्ड करने की, उसके रक्त सैम्पिलों का परीक्षण करने की, उसके बालों या अन्य शारीरिक सामग्री का डी.एन.ए. परीक्षण आदि करने की, अनुमति प्रदान करके अन्वेषण में सहयोग करने के लिए बाध्य किया जा सकता है।

मौन के अधिकार से संबंधित कुछ पहलुओं को यूनिवर्सल डिक्लरेशन आफ ह्यूमेन राइट्स 1949 में सम्मिलित किया गया था। उसका अनुच्छेद 11.1 निम्नलिखित रूप में हैं :—

> "11.1 दण्डनीय अपराध में आरोपित प्रत्येक व्यक्ति का यह अधिकार है कि उसे तब तक निर्दोष माना जाए जब तक कि लोक विचारण में, जहां उसे अपनी प्रतिरक्षा करने के लिए आवश्यक सभी प्रकार की गारंटी हो, विधि के अनुसार, दोषी सिद्ध नहीं कर दिया जाता।"

सिविल तथा राजनीतिक अधिकारों के विषय में अंतरराष्ट्रीय कवेनान्ट, 1966 के, जिसमें भारत एक पक्षकार है, अनुच्छेद 9.1 में यह कथन है कि किसी भी व्यक्ति को ऐसे आधारों तथा ऐसी प्रक्रिया के अनुसार के सिवाए उसके स्वातंत्र्य से वंचित नहीं किया जाएगा जो विधि द्वारा स्थापित है; अनुच्छेद 9.2 में कथन है कि जिस व्यक्ति को भी गिरफ्तार किया जाए उसे गिरफ्तार करते समय उसकी गिरफ्तारी के कारणों की जानकारी दी जाएगी और अतिशीघ्र उन आरोपों की जानकारी दी जाएगी जो उसके विरुद्ध हैं। अनुच्छेद 11.3 न्यायालय में तुरंत विचारणके लिए पेश करने के अधिकार का उल्लेख है। अनुच्छेद 14(3)(छ) में विभिन्न "न्यूनतम गारंटियों" का उल्लेख है और कहा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को यह अधिकार है :

> "अनुच्छेद 14(3)(छ) कि उसे अपने विरुद्ध साक्षी होने अथवा दोष स्वीकार करने के लिए विवश नहीं किया जाएगा।"

मानव अधिकारों की सुरक्षा तथा मूल स्वतंत्रताओं की सुरक्षा के विषय में यूरोपीय कन्वेन्शन के अनुच्छेद 6(1) में यह अधिकथित है कि प्रत्येक आरोपित व्यक्ति को 'निष्पक्ष' विचारण का अधिकार है तथा अनुच्छेद 6(2) में निम्नलिखित कथन है :

> "अनुच्छेद 6(2) दण्डनीय अपराध से आरोपित प्रत्येक व्यक्ति को तब तक निर्दोष माना जाएगा जब तक विधि के अनुसार उसे दोषी सिद्ध नहीं कर दिया जाता।"

भारत में, अपने विरुद्ध साक्षी होने के प्रतिषेध का अधिकार अनुच्छेद 20 के खण्ड (3) में सम्मिलित किया गया है तथा मेनका गांधी के मामले के पश्चात् (1978) एस सी सी 248 अनुच्छेद 21 दाण्डिक मामलों में निष्पक्ष, न्यायोचित और साम्यापूर्ण प्रक्रिया अपनाने की अपेक्षा करता है।

वादगत प्रश्न को साबित करने का भार (जिसे विधिक अथवा परसूएसिव सबूत का भार कहा जाता है) ऐसा भार है जो अपरिवर्तनीय है तथा विश्वसनीय साक्ष्य प्रस्तुत करने का भार (जो साक्ष्य संबंधी भार के नाम से ज्ञात है) विचारण के दौरान निरंतर बदलता रहता है। अर्थात्, इन दोनों भारों के बीच जो मूल भूत अंतर है उसे ध्यान में रखना आवश्यक है। अनेक आधुनिक कानून, अभिवाक् या आरोप को साबित करने के भार को बनाए रखने को मान्यता प्रदान करते हैं, साक्ष्य संबंधी भार को परिवर्तनीय मानते हैं। उदाहरण के लिए, सिविल मामले में, वादी को यह साबित करना पड़ सकता है कि प्रतिवादी, धन उधार लेने के कारण उसका ऋणी है किन्तु परिक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 118 के अनुसार यह मूल साक्ष्य संबंधी भार प्रतिवादी पर चला जाता है यदि उसने वादी के पक्ष में कोई परिक्राम्य लिखत निष्पादित की है। साक्ष्य संबंधी भार की परिवर्तनशीलता की इस पद्धति को दाण्डिक मामलों में भी अपनाया गया है और विशेष रूप से वहां जहां अभियुक्त के कब्जे में ऐसी कोई सम्पत्ति पाई जाती है जिसको कब्जे में रखना विधि द्वारा अवैध घोषित किया गया है, जैसे कि, मादक द्रव्य या चुराई गई सम्पत्ति, आदि। विधान मण्डल साक्ष्य संबंधी भार में परिवर्तन करने के लिए पूरी तरह मुक्त है।

उदाहरण के लिए, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 के अंतर्गत, साक्ष्य संबंधी भार उस अभियुक्त को परिवर्तित हो जाता है जिसके पास से ऐसा धन मिलता है जिसका वह हिसाब नहीं दे सकता या ऐसी सम्पत्तियां मिलती हैं जो उसकी आय के ज्ञात साधनों के अनुपात से अधिक हैं। उत्पादशुल्क या सीमा शुल्क विधियों के अंतर्गत, तथा चोरी से माल आयात करने से संबंधित विधियों के अंतर्गत ऐसा साक्ष्य संबंधी भार कतिपय परिस्थितियों में मूलतः अभियुक्त पर होता है यदि अभियुक्त के पास कतिपय तथ्यों की विशेष जानकारी हो जैसे कि अवैध सम्पत्ति कहां पर पाई गई। ऐसे उपबंधों को यह कहकर चैलेन्ज किया जाता है कि वे स्वयं के विरुद्ध साक्ष्य के प्रतिषेध के सिद्धांत का हनन करते हैं किन्तु उन्हें वहां तक विधि संगत निर्णीत किया गया है जहां तक आरोप को साबित करने के भार की अपरिवर्तनीयता का संबंध है और जो भार राज्य या अभियोजन पर है।

तथापि, हाल ही में, यह आधारभूत सिद्धांत कि अभियुक्त के विरुद्ध अपराध को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करने का भार अभियोजन पक्ष पर है, विधानमण्डल द्वारा अनेक कानूनों में क्षीण किया जा रहा है। यह स्वतंत्रता से संबंधित मूल अधिकार के विपरीत है। ग्लानविल विलियम ने, जो दण्ड विधि पर महानतम कानूनविद है, निम्नलिखित कथन किया है :—

> "जहां यह कहा जाता है कि दाण्डिक आरोप से ग्रस्त प्रतिवादी को निर्दोष माना जाना चाहिए वहां इसका वास्तविक अर्थ यह है कि उसके दोष को साबित करने का भार अभियोजन पर है · · · ·। यह अप्रसन्नता की बात है कि संसद् इस सिद्धांत के प्रतिकूल है—बल्कि लगभग यह कहा जा सकता है कि उसे उसके प्रति अवमानना है। कानून की पुस्तक में ऐसे अनेक अपराध हैं जिनमें अपनी निर्दोषता साबित करने का भार अभियुक्त पर है · · ·। दुःख की बात यह है कि इस वांछित सिद्धांत से हटने का कभी कोई कारण या समीचीनता नहीं दर्शाई गई है; अपितु ऐसा लापरवाही और गाम्भीर्य की कमी के कारण किया गया है।"

22 LJ&CA|05-3

(ग्लान विल विलियम्स्, द प्रूफ आफ गिल्ट 1963, तृतीय संस्करण, स्टीवान्स, पृ. 184–185)

उक्त पृष्ठभूमि में तथा हमारे संविधान में जो संवैधानिक उपबंध हैं उनकी पृष्ठभूमि में हम यह विचार करना चाहते हैं कि मौन के अधिकार में कोई परिवर्तन आवश्यक है या नहीं और यदि ऐसे कोई परिवर्तन किए जाते हैं तो क्या वे विधिपूर्ण होंगे।

हम अन्य देशों में हाल ही में हुए कतिपय विकासों की चर्चा करेंगे।

यू.के.

प्रारम्भ में इंग्लैण्ड में विधि निर्माताओं के सामने उत्तरी आयरलैण्ड में आतंकवाद की समस्याएं थीं। उक्त समस्या का सामना करने के क्रिमीनल एवीडेन्स (नार्दर्न आयरलैण्ड) आर्डर, 1988 का संशोधन किया गया तथा जहां अभियुक्त पर बोलने की बाध्यता थी वहां उसके मौन रहने से निष्कर्ष निकालने की अनुज्ञा दी गई। आगे चलकर ऐसे ही परिवर्तन क्रिमिनल जस्टिस एण्ड पब्लिक आर्डर एक्ट, 1984 में धारा 34 से 37 तक अधिनियमित करके इंग्लिश कानून में किए गए। ये उपबंध पूछताछ के दौरान किसी संदिग्ध के अथवा विचारण के दौरान अभियुक्त के मौन से 'उचित निष्कर्ष' निकालने की अनुमति देते हैं। न्यायालय जूरी के समक्ष मामले का सारांश प्रस्तुत करते समय मौन के विषय में टिप्पणी कर सकता है। जूरी भी मौन के विषय में विचार कर सकती है।

क्रिमिनल एवीडेन्स (ना.आ.) आर्डर, 1988 के अंतर्गत उत्तरी आयरलैण्ड के एक मामले में यह विषय सर्वप्रथम मुरे बनाम डी पी पी (1993 क्रिमिनल अपील रिपोर्ट 151) में हाऊस आफ लार्डस के समक्ष आया था। क्या न्यायाधीश कानून के अंतर्गत मौन पर विचार करने के लिए समर्थ था? उत्तरी आयरलैण्ड में मामले जूरी के समक्ष नहीं जाते हैं जो 1994 के इंग्लिश एक्ट के उपबंधों से भिन्न हैं। लार्ड मस्टिल ने कहा कि यद्यपि आयरलैण्ड का कानून अभियुक्त के मौन की दशा में 'उचित निष्कर्ष' निकालने की शक्ति प्रदान करता था, यह सर्वप्रथम आवश्यक था कि अभियुक्त के विरुद्ध प्रथमदृष्टया मामला स्थापित किया जाए। केवल तब ही नए उपबंधों का आश्रय अभियुक्त के दोष के बारे में निष्कर्ष निकालने के प्रयोजन के लिए लिया जा सकता था। न्यायालय को 'कामन सेन्स एप्रोच' अपनानी होगी। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि अभियुक्त के मौन के आधार मात्र पर दोष के संबंध में निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता था।

अपील में यूरोपीय न्यायालय ने मुरे बनाम यूनाइटेड किंगडम (1966) 22 ई एच आर आर 29, में यह निर्णय दिया कि 1988 की आयरलैण्ड की विधि के अन्तर्गत आयरलैण्ड में मौन के अधिकार के अवक्रमण के कारण निष्पक्ष विचारण के अधिकार का अथवा यूरोपीय कन्वेन्शन के अनुच्छेद 6 में उल्लिखित निर्दोषिता की परिकल्पना का कोई उल्लंघन नहीं होता है। यह निर्णय भी दिया गया कि अभियुक्त के मौन मात्र के आधार पर विचारण न्यायाधीश कोई विपरीत निष्कर्ष नहीं निकाल सकता था तथा अभियुक्त के दोष को प्रथमदृष्टया स्थापित करना आवश्यक था। एक अतिरिक्त शर्त यह भी लगाई गई कि नए उपबंधों का आश्रय तब तक नहीं लिया जा सकता था जब तक यह साबित न हो जाए कि अभियुक्त को पुलिस द्वारा पूछताछ के समय अथवा विचारण के समय किसी वकील को बुलाने का अवसर प्रदान किया गया था। यह एक आज्ञापक नियम था।

ऊपर उल्लिखित निर्णय के पश्चात्, जो कि आयरलैण्ड की विधि से संबंधित था, इंग्लिश संसद् ने इस दौरान क्रिमिनल जस्टिस एण्ड पब्लिक आर्डर एक्ट, 1994 में, जैसा कि वह इंग्लैण्ड और वेल्स पर लागू था, तत्समान उपबंध जोड़ दिए। उक्त अधिनियम में यूथ जस्टिस एण्ड क्रिमिनल एवीडेन्स एक्ट, 1999 द्वारा संशोधन कर दिया गया और ऐसे उपबंध डाल दिए गए जो यह अपेक्षा करते थे कि संदिग्ध अथवा अभियुक्त को यह जानकारी देना आवश्यक था कि उसे अपने वकील को बुलाने का अधिकार है।

सन् 1999 में धारा 34 में उपधारा (2क) जोड़ी गई। यह धारा विचारणपूर्व मौन से संबंधित है। उपधारा (2क) वकील को बुलाने के अवसर के बारे में उपबंध करती है और निम्नलिखित रूप में है :—

> "धारा 34(2क) : व्यतिक्रम के समय यदि अभियुक्त निरोध के किसी प्राधिकृत स्थान पर हो तो उपधारा (1) और (2) लागू नहीं होंगी यदि उसे पूछताछ करने, आरोपित करने अथवा उपधारा (1) में उल्लिखित के अनुसार सूचित किए जाने के पूर्व किसी सालिसिटर से परामर्श करने का अवसर प्रदान नहीं कर दिया जाता।"

धारा 36 में भी उपधारा (4क) के रूप में एक तत्समान उपबंध जोड़ा गया था। धारा 36 वस्तुओं, पदार्थों और चिन्हों के विषय में अभियुक्त द्वारा स्पष्टीकरण देने में असफलता के संबंध में है। धारा 35 में उपधारा (3क) जोड़ी गई। यह धारा विचारण के समय मौन के अधिकार के विषय में है। इसी प्रकार से धारा 37 में, जो अपराध स्थल पर अभियुक्त की उपस्थिति के विषय में है, उपधारा (3क) जोड़ी गई। इन सभी नई उपधाराओं में यह अपेक्षा की गई है कि अभियुक्त को यह सूचना दी जानी चाहिए कि उसे, जब भी उससे कोई पूछताछ की जाए, किसी वकील की उपस्थिति का अधिकार है। यदि उसे इस प्रकार की सूचना नहीं दी जाती है तो इस तथ्य को विचार में नहीं लिया जा सकता था कि अभियुक्त मौन रहा।

अतः, अभियुक्त के मौन के कारण तब तक किसी निष्कर्ष की परिकल्पना नहीं की जा सकती जब तक कि अभियोजन यह स्थापित नहीं कर देता कि अभियुक्त प्रथमदृष्ट्या दोषी है। यह समझना कठिन है और अनेक कानूनविदों ने भी कहा है कि अभियुक्त के मौन का आश्रय लेने के लिए न्यायाधीश को अनुमति देने से कोई अतिरिक्त लाभ नहीं होता है। इसके अतिरिक्त, यद्यपि इंग्लिश विधि में "उचित निष्कर्ष" निकालने का उपबंध करने से संबंधित संशोधन किया गया है किन्तु यूरोपीय न्यायालय ने मुरे बनाम यू.के. में इसकी कठोरता को कम कर दिया है और यह पाबंदी लगा दी है कि मौन का लाभ आश्वासन या समर्थन के सीमित प्रयोजन के लिए लिया जा सकता है और वह भी तब जब अभियुक्त को सूचित कर दिया गया हो कि उसे पूछताछ के समय अपने साथ वकील रखने का अधिकार था।

किन्तु, हाऊस ऑफ लार्डस् तथा यूरोपीय न्यायालय के अनुसार इस निर्णय पर पहुंचने से पूर्व ही कि अभियुक्त युक्तियुक्त संदेह से परे दोषी है अभियुक्त के मौन का निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रयोग किया जा सकता है।

यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि कितने मामलों में भारत में पुलिस अधिकारी उच्चतम न्यायालय द्वारा डी.के. बसु के मामले में दिए गए निर्णय में अधिकथित निर्देशों का पूरी तरह से अनुसरण कर रहे हैं? उच्चतम न्यायालय में लंबित एक लोकहित मुकदमें में, हाल ही में, न्यायालय द्वारा नियुक्त अधिवक्ता ने यह रिपोर्ट दी थी कि, विभिन्न राज्यों से प्राप्त जानकारी के अनुसार, यह स्पष्ट था कि डी.के. बसु में दिए गए मार्ग-निर्देशों का अधिकांश राज्यों में पालन नहीं किया जा रहा है। क्या कोई आश्वस्त कर सकता है कि भारत में पुलिस निरुद्ध व्यक्ति को आवश्यक रूप से यह सूचित करेगी कि उसे उससे पूछताछ के समय किसी अधिवक्ता को बुलाने का अधिकार प्राप्त है? यदि हम इस आशय का कोई नियम लागू कर भी देते हैं और यदि पुलिस अपनी डायरी में यह बात लेखबद्ध भी कर देती है कि ऐसा अवसर दिया गया था तब भी यह कहना संभव नहीं है कि भारत में ऐसी प्रविष्टि पर कितना विश्वास किया जा सकता है। इंग्लैण्ड में भी यह कहा गया था कि यदि यह प्रविष्टि करने के पश्चात् कि अभियुक्त को वकील बुलाने के उसके अधिकार की जानकारी दी गई थी, यदि डायरी में अभियुक्त के हस्ताक्षर नहीं लिए जाते हैं तो वह पुलिस एण्ड क्रिमिनल एवीडेंस एक्ट, 1984 की धारा 78 का उल्लंघन माना जाएगा। एक अन्य ध्यान देने योग्य बात यह है कि यूरोपीय कन्वेंशन का अनुच्छेद 6(1) केवल निष्पक्ष विचारण के अधिकार की और अनुच्छेद 6(2) निर्दोषिता की परिकल्पना की बात करता है। उसमें स्वयं के विरुद्ध साक्षी होने के प्रतिषेध के अधिकार का कोई उल्लेख नहीं है जैसा कि हमारे संविधान के अनुच्छेद 20(3) अथवा अमरीकी संविधान के पांचवें संशोधन में है। यूरोपीय न्यायालय ने मुरे बनाम यू.के. में निःसंदेह यह कथन किया था कि यदि प्रथमदृष्टया मामला स्थापित हो जाने के पश्चात् तथा अभियुक्त को उसके इस अधिकार की सूचना दिए जाने के पश्चात् कि वह अपना वकील बुला सकता है, अभियुक्त के मौन को विचार में लिया जाता है तो इससे अनुच्छेद 6(1) में निष्पक्ष विचारण के उपबंध का उल्लंघन नहीं होगा।

अब हम यूरोपीय न्यायालय द्वारा कोन्ड्रान बनाम यूनाइटेड किंगडम में हाल ही में दिए गए 2 मई, 2000 के निर्णय की चर्चा करेंगे। यह मामला 1994 के इंग्लिश एक्ट के अंतर्गत सीधे उठा था। न्यायालय ने ऊपर उल्लिखित मुरे के मामल में दिए गए निर्णय का आश्रय लिया और कहा कि मौन का अधिकार नि:शर्त या संपूर्ण नहीं था अपितु प्रथमदृष्टया मामला होना आवश्यक था और उस निर्णय में उल्लिखित रक्षोपायों का, अर्थात्, अभियुक्त या संदिग्ध को अधिवक्ता को बुलाने का अवसर देने की बात आवश्यक थी। कोनड्रान का मामला ऐसा था जहां अभियुक्त व्यक्तियों ने अधिवक्ता को बुलाने के अपने अधिकार का प्रयोग किया था और क्योंकि अधिवक्ता ने उन्हें पुलिस द्वारा पूछताछ के दौरान मौन रहने का परामर्श दिया था, वे मौन रहे और जब विचारण के समय उनसे जिरह की गई (जो प्रक्रिया भारत में प्रचलित नहीं है), अभियुक्तों ने कहा कि वे इसलिए मौन रहे क्योंकि अधिवक्ता ने ऐसा परामर्श दिया था। इस पर न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की :—

"....इस स्थिति में न्यायालय यह कहना चाहेगी कि आवेदकों से जिरह उनके अधिवक्ता के परामर्श के संदर्भ में की गई और इसके कारण कन्वेन्शन के अनुच्छेद 6 के अधीन निष्पक्षता का प्रश्न नहीं उठ सकता। अभियुक्त उन्हें दिए गए परामर्श को प्रकट करने के लिए बाध्य नहीं थे, सिवाए इसके कि उन पर अप्रत्यक्ष दबाव था कि वे अपने मौन का कारण बताने से बचें और वह कारण केवल स्पष्टीकरण के रूप में ही माना जाए। आवेदकों ने अपने अधिवक्ता के परामर्श की विषय वस्तु को अपनी प्रतिरक्षा के भाग के रूप में एक जीवन्त प्रश्न बनाने का निश्चय किया। इसी कारण से, वह यह शिकायत नहीं कर सकते कि 1994 के अधिनियम की धारा 34 की स्कीम ऐसी है कि वह आवेदकों और उनके अधिवक्ता के बीच चर्चा की गोपनीयता पर हावी हो जाएगी।"

यूरोपीय न्यायालय के उपरोक्त कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि अभियुक्त मौन रहता है तो वह अपने प्रतिकूल निष्कर्ष की जोखिम उठाएगा किन्तु यदि वह कानूनी सलाह लेता है और यह कथन करता है कि उसके अधिवक्ता ने उसे मौन रहने का परामर्श दिया है तो न्यायालय यह कह देगा कि विचारण निष्पक्ष था और अभियुक्त ने गोपनीयता के अपने विशेषाधिकार का त्याग कर दिया। परिणाम हर तरह से उसके प्रतिकूल होंगे।

हम इस बात पर भी ध्यान दे सकते हैं कि कोन्ड्रोन के मामले में, विचारण के दौरान अधिवक्ता की परीक्षा भी इस विषय में हुई थी कि उसने क्या परामर्श दिया था। यह बात न्यायालय की निम्नलिखित टिप्पणी से स्पष्ट है :—

"उन्होंने (अभियुक्तों ने) शपथ पूर्वक कहा है कि उन्होंने अपने अधिवक्ता के परामर्श के अनुसार कार्य किया था जिसे पुलिस द्वारा पूछताछ के दौरान उसका सामना करने में अभियुक्तों की योग्यता के बारे में संदेह था. . . और उनके अधिवक्ता ने कार्यवाही के दौरान अपने साक्ष्य में इस बात की पुष्टि की थी. . . .तब विचारण न्यायालय ने इस स्पष्टीकरण की ओर जूरी का ध्यान नि:संदेह आकर्षित किया था। तथापि, न्यायाधीश ने ऐसे शब्दों में यह कहा जिससे जूरी विपरीत निष्कर्ष निकालने के लिए इस बात के होते हुए भी स्वतंत्र हो गई कि वह स्पष्टीकरण की सत्यता के बारे में संतुष्ट हो सकती थी। यह ध्यान देने की बात है कि अपीली न्यायालय ने विचारण न्यायाधीश के निदेश के शब्दों को इस विषय में अपर्याप्त माना . . . .न्यायालय की राय में, निष्पक्षता की दृष्टि से, जूरी को यह निदेश दिया जाना चाहिए था कि वह कोई प्रतिकूल निष्कर्ष केवल तब निकाल सकती थी जब उसका यह समाधान हो जाता कि पुलिस साक्षात्कार के दौरान आवेदक के मौन का एकमात्र उचित आधार यह हो सकता था कि उसके पास कोई उत्तर नहीं था जो प्रतिपरीक्षा में ठहर सकता। . . . .

. . . जैसा कि आवेदकों ने इशारा किया है, यह अभिनिश्चित करना असंभव है कि आवेदकों के मौन को जूरी ने कितना वजन दिया था। न्यायालय ने जॉन मुरे के निर्णय की इस बात पर ध्यान दिया था कि उस मामले में तथ्यों का विचार करने वाला न्यायाधीश अनुभवी न्यायाधीश था और वह अपने निर्णय में निष्कर्ष निकालने और उनका आश्रय लेने के कारणों को स्पष्ट करने के लिए बाध्य था। इसके अतिरिक्त ऐसा करने के विवेकाधिकार का न्यायाधीश द्वारा पुनरीक्षण अपीली न्यायालय द्वारा किया जा सकता था। . . . . तथापि, ये रक्षोपाय इस मामले में नदारद थे। यह स्थापित करना और भी अनिवार्य था कि जूरी को उचित प्रकार से यह परामर्श दिया गया था

कि वह आवेदकों के मौन को किस प्रकार से ले। यह सत्य है कि न्यायाधीश जूरी को आवेदकों के मौन से प्रतिकूल निष्कर्ष निकालने के विकल्प का प्रयोग करने की स्वतंत्रता देने के लिए बाध्य नहीं था और उसके पास यही विकल्प था और यह विकल्प रह जाने पर जूरी ऐसा करने या न करने के लिए स्वतंत्र थी। यह भी सत्य है कि आवेदकों के दोष को युक्तियुक्त संदेह से परे साबित करने का भार अभियोजन पर है और जूरी को यह सूचित कर दिया गया था कि आवेदकों का मौन "स्वयं में दोष को साबित" नहीं कर सकता था। . . . . तथापि, इन रक्षोपायों के होते हुए भी न्यायालय यह मानता है कि जूरी को विवेकाधिकार को निर्बन्धित करने में न्यायाधीश द्वारा हुए लोप की तुलना पुलिस थाने पर आवेदकों के मौन के अधिकार के प्रयोग से नहीं की जा सकती।"

न्यायालय ने आगे यह भी कहा

"अपीली न्यायालय के पास यह अभिनिश्चित करने का कोई उपाय नहीं था कि सिद्धदोष ठहराने में जूरी के निर्णय में आवेदकों के मौन का कोई महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा था या नहीं. . . ."

न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि 1994 में पुर:स्थापित इंग्लिश अधिनियम की धारा 34 ने केवल जूरी को यह विवेकाधिकार प्रदान किया था और क्योंकि न्यायाधीश ने जूरी को यह विवेकाधिकार नहीं दिया अत: सजा रद्द किए जाने योग्य थी। न्यायालय ने निम्नलिखित टिप्पणी की :

"कोई अन्य निष्कर्ष मौन के महत्वपूर्ण मूल अधिकार के विरुद्ध होगा जो कि ऐसा अधिकार है जो कि, जैसा पहले कहा जा चुका है, अनुच्छेद 6 द्वारा गारंटीकृत निष्पक्ष प्रक्रिया के सिद्धांत की आधारशिला है।"

हमने यूरोपीय न्यायालय के कोन्ड्रोन मामले में दिए गए निर्णय में से, जो मामला 1994 में यथासंशोधित यू.के. विधि से उदभूत हुआ था, अंश विस्तारपूर्वक उद्धृत किए हैं, जिससे कि उन परिणामों को दर्शाया जा सके जो 1994 के संशोधनों के पश्चात् इंग्लिश विधि को सहन करने पड़ रहे हैं।

अत: मौन के अधिकार के संबंध में 1994 में विधि में जो परिवर्तन हुए हैं उनके पश्चात् इस समय इंग्लिश न्यायालय जिन नई समस्याओं का सामना कर रहे हैं उन पर हम विचार करेंगे। वर्तमान में, अधिकांश मामलों में, प्रश्न किए जाने पर अभियुक्त यह कह देते हैं कि उनके वकील ने उन्हें मौन रहने के लिए कहा है। ऐसे प्रश्न उठे हैं कि क्या वकील ने अभियुक्त को इसलिए मौन रहने का परामर्श दिया क्योंकि उसे लगता था कि अभियुक्त पुलिस द्वारा पूछे गए कठोर प्रश्नों का अथवा किसी योग्य अभियोजक द्वारा रखे गए होशियारीपूर्ण और जटिल प्रश्नों का सामना करने में समर्थ नहीं होगा। ये प्रश्न भी उठे हैं कि क्या वकील को अभियुक्त के दोष की जानकारी थी और उसने यह महसूस किया कि अभियुक्त को अपने संवैधानिक अधिकार पर अड़ा रहना चाहिए। एक और भी प्रश्न उठा है कि क्या अभियुक्त के वकील की प्रतिपरीक्षा की जा सकती है, जैसा कि कोन्ड्रोन के मामले में परामर्श के ब्यौरों को प्रकट कराने के लिए किया गया था तथा क्या ऐसा करने से वकील और उसके क्लाइंट के बीच गोपनीयता का जो बुनियादी सिद्धांत है उसका उल्लंघन होगा या नहीं।

1994 के परिवर्तनों के पश्चात् इंग्लिश न्यायालयों को जिन समस्याओं का सामना करना पड़ा उनमें से कुछ की हम यहां चर्चा करेंगे। उदाहरण के लिए, वर्तमान विधि न्यायालय से यह अपेक्षा करती है कि वह पुलिस या न्यायालय द्वारा प्रश्न किए जाने पर अभियुक्त के मौन रहने की दशा में उसके मौन की बाबत 'उचित' निष्कर्ष निकाल सकता है। इस संबंध में कोई मार्गनिर्देश नहीं है कि विभिन्न स्थितियों या तथ्यों में किस प्रकार के निष्कर्ष निकाले जाने चाहिए। इसके अतिरिक्त, 1994 के पश्चात् भी यह स्वीकार किया गया है कि केवल मौन को अभियुक्त के विरुद्ध साक्ष्य नहीं माना जा सकता जब तक कि कोई प्रथमदृष्टया मामला न बनता हो। प्रथमदृष्टया मामले के संबंध में भी विभिन्न राय सदैव हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, अभियुक्त मौन रहने का निश्चय कर सकता है यदि वह उसकी निर्दोषिता पर प्रश्न चिन्ह लगाने वाले व्यक्ति के अधिकार को स्वीकार नहीं करता है। जीसस ने मौन रहने का निश्चय संभवत: इसलिए किया हो कि उन्हें उनकी निर्दोषिता पर प्रश्न चिन्ह लगाने वाले कॉन्टियस पाइलट की अधिकारिता स्वीकार्य नहीं थी।

22 LJ4CA/05-4

(देखिए मैथ्यू 27 : 11—14; ल्यूक : 22 : 2-5) (रोजमैरी पेटेन्डन द्वारा ''इन्फ्रेन्स फ्राम साइलेन्स'' 1995 क्रि. ला. रिव्यू पृ. 602 पर उद्धृत)। हो सकता है कि अभियुक्त मौन रहा हो क्योंकि उसे यह लगा हो कि अभियोजन का मामला कमजोर है; वह मौन रहा हो क्योंकि उसके अधिवक्ता ने उसे मौन रहने के लिए कहा हो।

यह भी स्पष्ट नहीं है कि इस कथन का क्या अर्थ है कि अभियुक्त के मौन से कोई निष्कर्ष निकालने के पूर्व अभियोजन को एक प्रथमदृष्टया मामला सिद्ध करना होगा जैसा कि लार्ड मस्टिल ने हाऊस आफ लार्डस् के समक्ष तथा तत्पश्चात् यूरोपीय न्यायालय ने भी कहा है। (देखिए मुरे बनाम डी पी पी (1993) क्रि. अपील रिपोर्ट 151 (हा.ला.) तथा (1996) 22 ई.एच.आर.आर. 29 । हाऊस आफ लार्ड्स में उसी निर्णय में लार्ड स्लाइन ने ''स्पष्ट प्रथमदृष्टया मामला'' तथा न्यायाधीश कैली ने आर बनाम मर्फी (एन आई सी ए अरिपोर्टित 2-4-93) में ''मजबूत प्रथमदृष्टया मामला'' शब्दों का प्रयोग किया था। यह भी स्पष्ट नहीं है कि अभियुक्त के विरुद्ध न्यायालय जो निष्कर्ष निकाले क्या उनका संबंध किन्हीं विनिर्दिष्ट तथ्यों से होना चाहिए अथवा क्या ऐसा निष्कर्ष अभियुक्त के दोष का सामान्य निष्कर्ष हो सकता था। किन्तु, लार्ड मस्टिल ने यह कहा कि धारा 35 एक प्रश्न के संबंध में लागू हो सकती है और हो सकता है कि अन्य प्रश्नों के संबंध में लागू न हो। यह स्पष्ट नहीं है कि व्यवहार में ऐसा कैसे किया जा सकता है। इंग्लैण्ड में, अभियुक्त वास्तव में दण्ड साक्ष्य अधिनियम, 1898 की धारा 1(च) (ii) का आश्रय ले सकता है और यह कथन कर सकता है कि वह कोई वक्तव्य नहीं देना चाहता क्योंकि प्रतिपरीक्षा की जोखिम है। उक्त अधिकार का क्या होगा यह स्पष्ट नहीं है। उदाहरण के लिए, आर बनाम बार्कले (एन आई सी आर, नवम्बर 27, 1992) में अभियुक्त ने कुछ भी कहने से इसलिए इंकार कर दिया क्योंकि उसे भय था कि यदि उसने यह संकेत दे दिया कि सह-अभियुक्त ही वास्तव में दोषी व्यक्ति था तो सहअभियुक्त उसे धमकी दे सकता था। ऐसी दशा में क्या यह कहा जा सकता है कि इन परिस्थितियों में भी यह मामला ऐसा उचित मामला था जिसमें अभियुक्त के विरुद्ध निष्कर्ष निकाला जा सकता था क्योंकि वह मौन रहा था?

मौन सदैव निर्दोषिता से संगत हो सकता है—अभियुक्त परेशानी, विभ्रम, संकोच या किसी अन्य व्यक्ति को बचाने की इच्छा के कारण अथवा बदले से बचने के लिए अथवा किसी अन्य व्यक्ति के अनुचित व्यवहार को छिपाने के उद्देश्य से मौन धारण कर सकता है अथवा हो सकता है कि मौन रहने की उसकी सामान्य आदत हो या उसमें समझदारी का अभाव हो अथवा भाषा या साक्षरता की समस्या हो; मादक द्रव्यों का सहारा लेना भी एक कारण हो सकता है; हो सकता है कि पुलिस द्वारा दी गई चेतावनी को उसने समझा ही न हो; सम्भव है कि उसने इस बात को महसूस ही न किया हो कि ऐसे कतिपय तथ्य, जिनकी उसे जानकारी है, उसकी निर्दोषिता को सिद्ध कर सकते है; अथवा, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, हो सकता है कि वह इसलिए मौन रहा हो क्योंकि उसके वकील ने उसे यही सद्भावपूर्ण परामर्श दिया हो। पुलिस एण्ड क्रिमिनल एवीडेन्स एक्ट, 1984 की धारा 58 के अधीन विधिक परामर्श लेने के अभियुक्त के अधिकार का क्या होगा। इन प्रश्नों का अभी तक संतोषप्रद उत्तर प्राप्त नहीं है। मान लीजिए कोई अभियुक्त विचारण के समय प्रश्न किए जाने पर यह उत्तर देता है कि ''मैं नहीं जानता'' अथवा ''यह सत्य नहीं है'', तो क्या इस आधार पर कि उपरोक्त शब्दों का अर्थ मौन है, अभियुक्त के विरुद्ध कोई निष्कर्ष निकाला जा सकता है? यदि नहीं, तो क्या उसके मौखिक इंकार तथा उसके मौन में कोई अंतर है?

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, मौन के अधिकार में सबसे पहला अतिक्रमण क्रिमीनल एवीडेन्स (नार्दर्न आयरलैण्ड) आर्डर, 1988 से उस समय प्रारम्भ हुआ था जब आयरलैण्ड में आतंकवादी कारनामे बहुत बड़े पैमाने पर आरम्भ हुए थे। 1972 में विधि पुनरीक्षण समिति ने यह अनुभव किया था कि संदिग्ध आतंकवादियों, सशस्त्र लूटपाट के गंभीर अपराधों तथा गंभीर धोखाधड़ी के अपराधों के संदिग्ध व्यापारियों के संबंध में मौन से संबंधित विधि में ऐसा अतिक्रमण आवश्यक था। (दण्ड विधि पुनरीक्षण समिति की साक्ष्य विषय पर 11वीं रिपोर्ट (1972) देखिए। (सी एम एन डी 4991, पैरा 21 (V) तथा पैरा 20) और धोखाधड़ी विचारण समिति की रिपोर्ट, 1986 (पैरा 2.32) देखिए। आयरलैण्ड में आतंकवाद को समाप्त करने के लिए प्रस्तावित विधि इंग्लैण्ड में 1994 में स्वीकार की गई थी और वह ऐसे सभी दाण्डिक मामलों पर लागू थी जहां अभियुक्त ने मौन रहने का निर्णय लिया हो।

इंग्लैण्ड में इस बात पर खेद प्रकट किया गया है कि सरकार ने 1994 के परिवर्तन दण्ड विधि पुनरीक्षण समिति की 1972 की 11वीं रिपोर्ट के आधार पर किए थे। यद्यपि दो अन्य रायल आयोगों ने इस बात की सिफारिश की थी कि मौन के अधिकार का उल्लंघन नहीं किया जा सकता था। (दण्ड प्रक्रिया विषय पर रायल आयोग की रिपोर्ट (सी एम एन डी 8092, 1981) के पैरा 4, 47 तथा पैरा 4.53 तथा दण्ड न्याय विषय पर रायल आयोग की रिपोर्ट का अध्याय 4, पैरा 20-25, देखिए। (दण्ड विधि रिव्यू 1995 पृष्ठ 4)।

न्यायालय कब यह कह सकता है कि प्रथमदृष्टया मामला सिद्ध हो चका है तथा न्यायालय कब यह कह सकता है कि उसके पास इस बात का पर्याप्त साक्ष्य है कि अभियुक्त को अपना वकील बुलाने के अधिकार के बारे में परामर्श दिया गया था। ये विषय भारतीय न्यायालयों में गंभीर प्रश्नों का रूप धारण कर सकते हैं। यदि भारत में अभियुक्त तथा वकीलों से यह जिरह की जाए कि क्या परामर्श दिया गया था तो और अधिक गड़बड़ जो जाएगी। अत: यह स्पष्ट है कि इंग्लिश विधि में 1994 में किए गए परिवर्तनों को स्वीकार नहीं किया जाए अन्यथा और अधिक मुकदमेबाजी होंगी, अधिक अनिश्चितता और प्रतिरक्षा में और अधिक बहस बढ़ेगी और सम्भवत: भारत में और अधिक अपराधी छूटेंगे। वास्तव में, कोन्ड्रोन के मामले में यूरोपीय न्यायालय ने इंग्लैण्ड में अपीली न्यायालय के ऐसे अनेक निर्णयों को उद्धृत किया है जो 1994 और 2000 के बीच के हैं तथा उक्त निर्णयों से यह प्रकट होता है कि इंग्लिश विधि 1994 के पश्चात् और अधिक अनिश्चित हो गई है।

क्रिमीनल ला रिव्यू (यू.के.) तथा अन्य पत्रिकाओं में 1994 से ही ऐसे अनेक लेख विख्यात विधिविदों ने लिखें हैं जिनमें इन नए परिवर्तनों के कारण इंग्लिश विधि में प्रवेश कर चुके विपरीत परिणामों और गंभीर समस्याओं की चर्चा की गई है।

आस्ट्रेलिया :

न्यू साऊथ वेल्स में यद्यपि अभियोजन को जूरी के समक्ष इस तथ्य पर टिप्पणी करने से विनिर्दिष्ट रूप से मना किया गया है कि प्रतिपक्षी ने साक्ष्य नहीं दिया था, किन्तु न्यायाधीश और कोई भी पक्षकार (अभियोजन पक्ष से भिन्न) जूरी के समक्ष टिप्पणी कर सकता है यदि प्रतिपक्षी ने कोई साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है। तथापि, जिस प्रकृति के टिप्पण किए जा सकते हैं उन पर पाबन्दियां हैं। ऐसे सुझाव की मनाही है कि प्रतिपक्षी ने ऐसा इसलिए किया था क्योंकि उसे अपराध करने के बारे में विश्वास था।

धारा 20 निम्नलिखित रूप में है : (न्यू सा.वे.)

''साक्ष्य देने में असफलता के बारे में टिप्पण :

धारा 20. (1) यह धारा केवल विचारणीय अपराध विषयक दाण्डिक कार्यवाही में लागू होगी।

(2) न्यायाधीश या कोई पक्षकार (अभियोजन पक्ष से भिन्न) प्रतिपक्षी की साक्ष्य देने में असफलता के बारे में टिप्पण कर सकता है। तथापि, जब तक कि कार्यवाही में किसी प्रतिपक्षी द्वारा टिप्पणी न की जाए, टिप्पणी में यह सुझाव नहीं दिया जा सकता कि प्रतिपक्षी साक्ष्य देने में इसलिए असफल रहा था क्योंकि प्रतिपक्षी संबंधित अपराध का दोषी था या यह विश्वास करता था कि वह उसका दोषी है।''

....

(5) यदि—

(क) दो या अधिक व्यक्तियों का किसी विचारणीय अपराध के लिए संयुक्त रूप से विचारण हो रहा है; और

(ख) उन व्यक्तियों में से किसी के द्वारा, उन व्यक्तियों द्वारा साक्ष्य देने में असफलता के बारे में कोई टिप्पणी की जाती है,

तो न्यायाधीश साक्ष्य देने में असफलता के विषय में टिप्पणी करने के अतिरिक्त, पैरा (ख) में विनिर्दिष्ट प्रकार की किसी टिप्पणी के विषय में टिप्पणी कर सकता है।

प्रतिवादी धारा 12 और धारा 17 के अंतर्गत सक्षम है किन्तु प्रतिबद्ध प्रतिरक्षा साक्षी नहीं है। अभियोजन पक्ष द्वारा टिप्पणी पर प्रतिबंध के बाबजूद यह हो सकता है कि अभियोजन इस न्यायिक टिप्पणी का उल्लेख करे कि प्रतिवादी मौन रहा था। तथापि, अभियोजक को यह ध्यान रखना होगा कि वह न्यायाधीश की टिप्पणी को अपनी टिप्पणी के रूप में ग्रहण न करे।

मौन के अधिकार की सीमाओं के बारे में प्रश्न वास्तव में विज़नेर स्टीनर बनाम क्वीन (1993) 178 कम्पनी ला रिपोर्ट 217 में उठा था। उस मामले में, जो कि क्वीनसलैण्ड का था, 3 के विरुद्ध 4 के बहुमत से मुख्य न्यायाधीश मेसन, ब्रेनान, डीन, डाउसन और टूहे न्यायाधीशों ने विचारण के दौरान न्यायाधीश द्वारा जूरी को दिए गए इस निदेश की पुष्टि की थी कि यदि प्रतिवादी ने उन तथ्यों के बारे में, जो उसके विरुद्ध किन्तु उसके विशेष ज्ञान में होने चाहिए थे, साक्ष्य न देने का निर्णय किया था तो उससे दोष का निष्कर्ष निकाला जा सकता था। उन्होंने यह निर्णय भी दिया था कि उस स्थिति में, जहां साक्ष्य से प्रथमदृष्टया मामला बनता हो, प्रतिवादी द्वारा साक्ष्य न देने का निर्णय करने से विपरीत निष्कर्ष निकाला जा सकता था, और ऐसी दशा में "मौन" न्यायालय के समक्ष साक्ष्य के मूल्यांकन में सम्मिलित किया जा सकता था। तथापि, बहुमत ने यह स्वीकार किया कि साक्ष्य देने में असफलता अपराध का साक्ष्य नहीं है और मौन का लाभ साक्ष्य में कमियों को पूरा करने के लिए नहीं लिया जा सकता। न्यायाधीश जूरी को यह सूचित करने के लिए बाध्य है कि प्रतिवादी को मौन रहने का हक है और हो सकता है कि उसके पास मौन रहने के लिए उचित कारण हों और मौन का अपराध से संबंध न हो।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है उक्त मामला क्वीन्सलैण्ड का था जहां के सुसंगत कानून में टिप्पणी करने पर कोई प्रतिबंध नहीं है। वहां न्यू साउथ वेल्स की विधि की धारा 20 के समान कोई धारा नहीं है।

इसी मामले में, बहुमत ने कुछ पूर्वतर इंग्लिश निर्णयों को उद्धृत किया था जिनका आशय यह था कि मौन का अधिकार, सिविल तथा दाण्डिक दोनों मामलों में, सदैव से ही कॉमन विधि का भाग रहा है और उस व्यक्ति को, जिसके बारे में यह अनुमान है कि उसे कतिपय तथ्यों की जानकारी है, उसका फल भोगना ही पड़ेगा और यदि वह ऐसा नहीं करता तो यह बात उसके विरुद्ध जा सकती है। आस्ट्रलिया के एक पूर्वतर निर्णय, अर्थात्, पेटी बनाम क्वीन (1991) 173 कॉमन ला रिपोर्ट 95 से भिन्नता दर्शाई गई थी। (पेटी में यह विनिश्चय किया गया था कि विचारण के दौरान यह सुझाव देने की अनुमति नहीं थी कि विचारण से पूर्व अभियुक्त द्वारा मौन के अधिकार का प्रयोग अपराध की जानकारी का निष्कर्ष निकालने का अथवा यह निष्कर्ष निकालने का आधार हो सकता था कि अपराधी किसी ऐसी नई प्रतिरक्षा में सहायक हो रहा था जिसका उल्लेख उसने पहले नहीं किया था। यह उल्लेख किया गया था कि पेटी का मामला यह अभिधारित नहीं करता कि विचारण न्यायाधीश को जूरी को यह अनुदेश देने की अनुज्ञा थी या नहीं कि क्राउन द्वारा साबित किए गए तथ्यों से उपलब्ध निष्कर्ष उस स्थिति में अधिक सुरक्षित रूप से निकाला जा सकता था जब अभियुक्त ने सुसंगत तथ्यों की बाबत साक्ष्य न देने का निर्णय लिया हो और जिनके बारे में न्यायालय का यह सोच हो कि अभियुक्त को उनकी व्यक्तिगत जानकारी थी।

बहुमत की ओर से मुख्य न्यायाधीश मेसन ने निम्नलिखित मत प्रकट किया :

"....साक्षियों की विश्वसनीयता के बारे में अथवा साक्ष्य से निकाले गए अनुमानों के बारे में संदेहों को तत्काल बट्टे खाते डाला जा सकता है यदि किसी पक्षकार का ऐसा परस्पर विरोधी साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जो ऐसा साक्ष्य दे सकता था या प्रस्तुत कर सकता था। विशेष रूप से दाण्डिक विचारण में निर्दोषिता से सुसंगत धारणा युक्तियुक्त नहीं हो सकती यदि उसके समर्थन में साक्ष्य का अभाव है और ऐसा साक्ष्य, यदि विद्यमान है भी तो, अभियुक्त की जानकारी में होना चाहिए।"

इसी के साथ, निम्नलिखित अपवाद स्वीकार किए गए थे :

"हो सकता है कि अभियुक्त के पास इस कारण के अतिरिक्त कि साक्ष्य से उसे इस मामले में कोई सहायता नहीं मिलेगी साक्ष्य न देने के कोई और कारण भी हों। जूरी को अनुदेश देने के समय यह बात ध्यान में रखनी होगी कि क्या अभियुक्त के साक्ष्य देने में असफलता से अभियोजन के मामले को बल मिलेगा। सामान्यतौर पर विचारण न्यायाधीश के लिए यह उचित है कि वह जूरी को तदनुसार सजग करे।"

"ऐसा नहीं है कि प्रत्येक मामले में अभियुक्त से साक्ष्य के रूप में स्पष्टीकरण देना या विरोधी वक्तव्य देना आवश्यक है। हो सकता है कि अभियुक्त की जानकारी में कोई विशेष तथ्य न हो। यदि अभियुक्त की जानकारी में कोई विशेष तथ्य हैं तब भी अभियोजन के मामले में ऐसी पर्याप्त कमियां हो सकती हैं जिनके कारण अभियुक्त मौन रहना चाहे और अभियोजन पर जो सबूत का भार है उसका आश्रय ले। बहुत कुछ प्रत्येक मामले की परिस्थितियों पर निर्भर करता है और तब तक जूरी को अभियुक्त द्वारा गवाही देने में असफलता पर ध्यान देने के लिए आमंत्रित नहीं किया जाना चाहिए जब तक कि ऐसी असफलता जूरी के समक्ष साक्ष्य का मूल्यांकन करने में उसे सहायता देने में स्पष्ट रूप से उपयोगी न हो।"

मु.न्या. मेसन ने आगे और भी कहा कि—

"केवल मौन से अपराध का निष्कर्ष निकालने तथा अन्यथा उपलब्ध तथ्यों से निष्कर्ष निकालने के बीच अंतर है, और निःसंदेह यह एक सूक्ष्म अंतर है और ऐसा निष्कर्ष अधिक सुरक्षित है क्योंकि अभियुक्त ने ऐसी किसी धारणा का समर्थन नहीं किया है। ऐसे तथ्य, जिनके बारे में जूरी की यह धारणा है कि वे अभियुक्त की जानकारी में हैं, निर्दोषिता से संगत हैं। यह अवधारित करते समय कि क्या अभियोजन ने सबूत के उस मानक का समाधान कर दिया है जो प्रतिवाद के लिए अपेक्षित है, अभियोजन के मामले का इस आधार पर आकलन करना सुसंगत है कि अभियुक्त ने ऐसी किसी धारणा या स्पष्टीकरण के समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है जो निर्दोषिता से संगत हो।"

उपरोक्त विभिन्न संभावनाओं का उल्लेख करने के पश्चात् मुख्य न्या. मेसन ने निम्नलिखित बातें स्पष्ट की हैं —

"अभियुक्त द्वारा साक्ष्य देने में असफलता स्वयं में कोई साक्ष्य नहीं है। यह आचरण द्वारा अपराध की स्वीकृति भी नहीं है। यह हो भी नहीं सकती, क्योंकि यह एक अधिकार का प्रयोग है जो अभियुक्त को प्राप्त है, अर्थात् अभियोजन अपना पक्ष सिद्ध करे। कुछ अन्य परिस्थितियों में, आरोप लगाए जाने पर भी मौन, जबकि उत्तर की अपेक्षा करना उचित हो, आचरण द्वारा दोष की स्वीकृति हो सकता है। (देखिए, उदाहरणार्थ रेग बनाम मिशेल (1892) काक्स. सी.सी. 503; रेग बनाम शेन्डलर (1976)(1) डब्ल्यू.एल.आर. 585 तथा "साइलेन्स एज एवीडेन्स" आस्ट्रेलिया ला जनरल, खण्ड 66 (1992) पृष्ठ 675 पर यंग द्वारा चर्चा)। किन्तु जब अभियुक्त विचारण के दौरान मौन रहने का निर्णय लेता है तो उसके मौन को अपराध की निहित स्वीकृति नहीं माना जा सकता। अभियुक्त को ऐसा मार्ग अपनाने का हक है और ऐसा मौन अपराध या निर्दोषिता का साक्ष्य नहीं है। यही कारण है कि विचारण के दौरान अभियुक्त के मौन रहने से अभियोजन द्वारा मामले की किन्हीं कमियों की पूर्ति नहीं की जा सकती; उसका प्रयोग सबूत के भार की पूर्ति के लिए नहीं किया जा सकता। केवल एक ही स्थिति में, जब साक्ष्य देने में अभियुक्त की असफलता ऐसी परिस्थिति हो जो दिए गए साक्ष्य के सबूत के रूप में मूल्य पर प्रभाव डाले और जूरी से यह अपेक्षित हो कि वह उस साक्ष्य को विचार में ले, जब जूरी मौन को विचार में ले सकती है और वह भी केवल साक्ष्य के मूल्यांकन के प्रयोजन के लिए। यह तथ्य कि साक्ष्य देने में अभियुक्त की असफलता का यह परिणाम हो सकता है, एक ऐसी बात है जो अभियुक्त को निःसंदेह यह अवधारित करते समय ध्यान में रखनी चाहिए कि वह इस अधिकार का प्रयोग करे या नहीं।"

22 LJ&CA/05-5

ऊपर अधिकथित सिद्धांत तथा उनके अपवाद किसी को भी पूरी तरह भ्रमित कर सकते हैं। वे वास्तव में नितांत विरोधी हैं।

न्यायधीश ब्रेनान तथा टूहे ने मु. न्या. मेसन से सहमति प्रकट करते हुए एक पृथक् निर्णय लिया। उन्होंने क्रिमिनल ला अमेन्डमेन्ट एक्ट, 1892 (क्वी) की धारा 3 का उल्लेख किया जो किसी व्यक्ति को दण्डनीय अपराध का अभियुक्त बनाती है तथा प्रत्येक अभियुक्त की पत्नी या पति को एक सक्षम किन्तु बाध्यता रहित साक्षी बनाती है। 1961 में, यह उपबंध क्रिमिनल कोड की धारा 618क में सम्मिलित किया गया था। 1977 में, एवीडेन्स एक्ट, 1977 (क्वी) की धारा 8 में पूर्वतर अधिनियमितियों को कुछ परिवर्तनों के साथ पुनः प्रस्तुत किया गया। आस्ट्रेलिया में, कतिपय अधिकार क्षेत्रों में, अभियोजन पक्ष द्वारा कोई टिप्पणी करने पर समान विधियों द्वारा पाबन्दी है। (एवीडेन्स एक्ट, 1906 (पश्चिमी आस्ट्रेलिया); एवीडेन्स एक्ट, 1910 (तस्मानिया) की धारा 85 (1)(ग); एवीडेन्स एक्ट, 1929 दक्षिणी आस्ट्रेलिया नियम 18(1) (II); एवीडेन्स एक्ट, 1971 (ए सी टी) की धारा 74(1)। कुछ ऐसे उदाहरण हैं जहां कानूनों में न्यायाधीश द्वारा अभियुक्त द्वारा साक्ष्य देने में असफलता के बारे में टिप्पण करने पर प्रतिबंध हैं। क्राइम्स एक्ट, 1900 न्यू साउथ वेल्स की धारा 407 (2); एवीडेन्स एक्ट, 1939 (एन टी) की धारा 9(3); क्राइम्स एक्ट, 1958 (विक्टोरिया) की धारा 309 (3)। क्वीन्सलैण्ड के कानून में ऐसा कोई उपबंध नहीं मिला है।

हम यह उल्लेख करना चाहते हैं कि उपरोक्त निर्णय में बहुमत ने ऐसे किसी चार्टर या बिल आफ राइट्स के किसी उपबंध का उल्लेख नहीं किया है जो अपने विरुद्ध साक्ष्य देने के प्रतिरोध संबंधी किसी अधिकार की गारंटी देता हो।

दूसरी ओर न्यायाधीश गारट्रोन और मकहग के अल्पमत निर्णय में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि मौन के अधिकार का संबंध निर्दोषिता के अनुमान से अधिक है तथा अभियोजन का यह कर्तव्य है कि वह दोष को युक्तियुक्त संदेह से परे तक सिद्ध करे। इन न्यायाधीशों ने यह कथन किया है कि निर्दोषिता का अनुमान और अभियोजन पक्ष पर सबूत का भार ऐसे आधार हैं जो मौन से कोई विपरीत निष्कर्ष निकालने की मनाही करते हैं। मौन साक्ष्य नहीं है। "निर्दोषिता के अनुमान और सबूत के भार के कारण, इस प्रकार का मौन कुछ भी सिद्ध नहीं करता और अभियुक्त के विरुद्ध कोई निष्कर्ष निकालने का कोई आधार नहीं हो सकता। न तो निर्दोषिता का अनुमान और न सबूत का भार उस स्थिति पर कोई प्रभाव डालते हैं जिनमें स्पष्टीकरण देने में असफलता स्वयं में एक साक्ष्य है। और स्वयं के विरुद्ध साक्ष्य के प्रतिषेध का विशेषाधिकार, उन परिस्थितियों में जिनमें यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि निर्दोष व्यक्ति स्पष्टीकरण देगा, अभियुक्त को स्वयं अपने विरुद्ध साक्ष्य देने के लिए नहीं अपितु अपने पक्ष में साक्ष्य देने के लिए समर्थ बना सकते हैं।"

हमारी राय में, अल्पमत का निर्णय स्वयं के विरुद्ध साक्ष्य के प्रतिषेध के अधिकार से अधिक संगत है जबकि मु.न्या. मेसन का बहुमत निर्णय तथा उसकी सहमति में दिए गए निर्णयों में परस्पर विरोधी कथन है। बहुमत को कोई ऐसा अवसर नहीं था कि वह किसी संवैधानिक गारंटी का उल्लेख करे जैसा कि हमारे संविधान के अनुच्छेद 20(3) में प्राप्त है अथवा किसी अंतरराष्ट्रीय कन्वेंशन, जैसे आई सी सी आर में है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, किसी भी विचारण न्यायाधीश को किन्हीं विशेष परिस्थितियों में अपवादों को लागू करना अत्यधिक कठिन होगा। बहुमत के विचारों से मुकदमेबाजी और बढ़ेगी। आस्ट्रेलिया में बाद के मुकदमों में, जैसे आर बनाम ओ. जी. डी. (1998) 45 एन एस डब्ल्यू सी आर 744; आर पी एस बनाम क्वीन 2000 एच सी ए 3, विधि को और स्पष्ट रूप से प्रस्तुत नहीं किया गया है।

एक और दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य यह है, और जहां तक आस्ट्रेलिया का संबंध है उस पर ध्यान देना होगा, कि प्रतिवादी को विचारण के समय बिना शपथ वक्तव्य देने का अधिकार 1994 में न्यू साउथ वेल्स में समाप्त कर दिया गया था यद्यपि यह अधिकार आज भी कुछ शेष विचारणों में विद्यमान है। बिना शपथ के वक्तव्यों को आस्ट्रेलिया में सभी अधिकार क्षेत्रों से उत्सादित कर दिया गया है। कतिपय कानूनविदों के अनुसार यह अभियुक्त के बोलने के अधिकार का, यदि वह बोलना चाहता है तो, एक गंभीर उल्लंघन है।

न्यू साउथ वेल्स के विधि सुधार आयोग ने सन् 2000 में दी गई अपनी हाल ही की रिपोर्ट संख्या 95 में, जिसका विषय "मौन का अधिकार" है, विभिन्न देशों में तथा आस्ट्रेलिया के भीतर जो विधि है उसका पुनरीक्षण करने के पश्चात् अनेक सिफारिशें की हैं। महत्वपूर्ण सिफारिशों में से एक सिफारिश संख्यांक 1 इस आशय की है कि क्रिमिनल जस्टिस एण्ड पब्लिक आर्डर एक्ट, 1994 (यू. के.) की धारा 34, 36 और 37 के आधार पर कोई भी कानून न्यू साउथ वेल्स में पेश नहीं किया जाना चाहिए। तथापि, सिफारिश संख्यांक 5 (क) और (ख) में जो कुछ कहा गया है उससे सिफारिश संख्यांक 1 में जो कहा गया है उसका असर समाप्त हो गया प्रतीत होता है। सिफारिश संख्यांक 5 (क) और (ख) महत्वपूर्ण हैं। सिफारिश 5 (क) में यह अधिकथित है कि तब के सिवाए जब न्यायालय अन्यथा कोई निदेश दे, प्रतिवादी को निम्नलिखित तथ्य और जानकारी लिखित में प्रकट करनी होगी :—

> "5(क) एलीबाई-साक्ष्य के लिए विद्यमान नोटिस अपेक्षाओं के अतिरिक्त तथा मस्तिष्क की असामान्यता के कारण तात्विक बाधा के अतिरिक्त, क्या प्रतिरक्षा पक्ष, आरोप के किसी अंश की बाबत, आरोप के उत्तर में कोई प्रश्न उठाना चाहता है (उदाहरण के लिए दुर्घटना, बल प्रयोग, पागलपन, नशा, उत्प्रेरण, प्रतिरक्षा, लैंगिक हमले के मामले में, रजामंदी, ऐसा युक्तियुक्त विश्वास कि शिकायतकर्ता की सहमति थी, अथवा यह बात कि प्रतिवादी ने ऐसा कोई कार्य नहीं किया था जिससे अधिकथित लैंगिक हमले का अपराध बनता हो; अनुमानित आपूर्ति के मामलों में, यह बात कि क्या अवैध मादक द्रव्य आपूर्ति के प्रयोजन से भिन्न किसी प्रयोजन के लिए था; धोखाधड़ी के उद्देश्य से किए गए अपराधों के मामलों में, अधिकार का दावा)"।

सिफारिश 5(ख) निम्नलिखित रूप में है :—

> "5(ख) किसी विशिष्ट मामले में, चाहे वह सिफारिश 5 (क) के अंतर्गत आता हो या नहीं, विचारण न्यायाधीश अथवा वह अन्य न्यायाधीश जिस पर विचारण से पूर्व निर्देश देने का उत्तरदायित्व है, किसी भी समय प्रतिवादी को मामले की उस सामान्य प्रकृति को प्रकट करने का आदेश दे सकता है जो प्रतिवादी विचारण के दौरान प्रस्तुत करना चाहता है और जो प्रश्न आरोप के विभिन्न पक्षों के इंकार के रूप में अथवा निर्दोषिता के रूप में उठाए जा सकते हैं, तथा सामान्य शब्दों में यह कथन करने का आश्वासन दे सकता है कि उस मामले का वास्तविक आधार क्या है जो जूरी के समक्ष प्रस्तुत किया जाने वाला है।"

इसके पश्चात् सिफारिश संख्यांक 10 में उन परिणामों का उल्लेख है जो सिफारिश संख्यांक 5 (क) और (ख) में निर्दिष्ट तथ्यों को प्रस्तुत करने के निर्देश का अनुपालन न करने की दशा में होंगे। सिफारिश संख्यांक 10 निम्नलिखित रूप में है :—

> "10. आयोग सिफारिश करता है कि विचारण के दौरान अप्रकटीकरण के लिए अथवा प्रकट किए गए मामले से विचलन की दशा में, न्यायाधीशों को निम्नलिखित परिणामों में से कोई भी अधिरोपित करने का विवेकाधिकार होगा :
>
> (क) अपेक्षाओं के अनुसार प्रकट न की गई सामग्री को ग्रहण करने से इंकार करने का विवेकाधिकर।
>
> (ख) किसी ऐसे पक्षकार के पक्ष में स्थगन स्वीकार करने का विवेकाधिकार जिस पक्षकार के मामले पर अन्य पक्षकार द्वारा प्रस्तुत की गई किसी ऐसी सामग्री से प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा जो सामग्री अपेक्षा के अनुसार पहले प्रकट नहीं की गई थी।
>
> (ग) जूरी विचारणों में, जूरी के समक्ष टिप्पणी करने का अथवा अधिवक्ता को टिप्पणी करने की अनुमति देने का विवेकाधिकार होगा। किन्तु ऐसी टिप्पणियां उन शर्तों के, जो उचित हों, अधीन रहते हुए की जा सकेंगी जो विचारण न्यायाधीशों द्वारा अधिरोपित की जाएं।

(घ) जूरी-रहित विचारणों में, विचारण न्यायाधीश प्रकटीकरण की अपेक्षाओं के अनुपालन में असफलता को उसी प्रकार से विचार में लेगा जिस प्रकार से जूरी उसे विचार में लेने की हकदार है।''

हमें यह प्रतीत होता है कि यद्यपि न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग ने 1994 के इंग्लिश अधिनियम की धारा 34, 36 और 37 के समतुल्य उपबंधों को सम्मिलित करने की सिफारिश नहीं की है तथापि, उसने कतिपय स्थितियों में अभियुक्त को अपना प्रतिरक्षा पक्ष प्रकट करने की अपेक्षा के विषय में तथा ऐसे प्रकटीकरण में असफलता की दशा में विपरीत टिप्पणी करने की सिफारिश की है। अभियोजन पक्ष को और न्यायाधीश को, दोनों को ही, अभियुक्त के बोलने से इंकार करने की बाबत टिप्पणी करने की अनुमति दी गई है। हमारी राय में मौन के अधिकार पर लगाई गई उपरोक्त पाबन्दियां सम्यक् न्यायपूर्ण प्रक्रिया नहीं है तथा यह भी कहा जा सकता हे कि जूरी तथा न्यायालय को तब तक मौन पर ध्यान देने की अनुमति नहीं दी जा सकती जब तक कि वे इस निष्कर्ष पर न पहुंच जाएं कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त के दोश को युक्तियुक्त संदेह के परे तक साबित कर दिया है।

नि:संदेह आयोग ने पुलिस द्वारा पूछताछ करने के दौरान, जब तक आरोप निर्धारित नहीं किए गए हों, मौन रखने में तथा आरोप तैयार हो जाने के पश्चात्, विचारण के दौरान मौन रहने के अधिकार के बीच जो अंतर है उसका उल्लेख किया है और कहा है कि पुलिस द्वारा पूछताछ के अनुक्रम में मौन का वही महत्व है जो विचारण के दौरान मौन का है क्योंकि उस अनुक्रम पर कोई आरोप या साक्ष्य नहीं है। पूछताछ के अनुक्रम में, संदिग्ध व्यक्ति मौन रह सकता है क्योंकि कोई भी बात स्पष्ट नहीं होती। विचारण के अनुक्रम में, आरोप भी होता है और साक्ष्य भी रहता है अत: किसी आघात का या भ्रम पैदा होने का या प्रश्नों का उत्तर देने की अपर्याप्त तैयारी का कम अवसर होता है। ऐसी स्थिति में भी पूछताछ के अनुक्रम में मौन पर विचार करने से न्यायाधीश या जूरी पर कोई प्रतिबंध नहीं है।

न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग ने अपनी रिपोर्ट में वस्तुत: मौन के अधिकार से संबंधित विभिन्न पक्षों का और यूरोपीय न्यायालय द्वारा निर्णीत मुरे बनाम यू. के. का उल्लेख किया है किन्तु आयोग ने यूरोपीय न्यायालय द्वारा अधिकथित शर्तों का उल्लेख नहीं किया है, अर्थात् इस बात का कि सर्वप्रथम एक प्रथमदृष्टया मामला होना चाहिए और उस पर भी मौन पर तब तक निर्भर नहीं किया जा सकता जब तक कि अभियुक्त या संदिग्ध व्यक्ति को अधिवक्ता बुलाने के उसके अधिकार की जानकारी नहीं दे दी जाती। अभियुक्त के बोलने के अधिकार, यदि वह बोलना चाहता है तो, को आस्ट्रेलिया में विधान मण्डल द्वारा उत्सादित करने का कोई औचित्य दिखाई नहीं देता। इसके अतिरिक्त आयोग ने अब यह सिफारिश की है कि न केवल न्यायालय का अपितु अभियोजन पक्ष को भी मौन के विषय में टिप्पणी करने की अनुमति दी जाती है क्योंकि जूरी न्यायाधीश द्वारा की गई टिप्पणी को इस बात का संकेत मानने की भूल कर सकती है कि मौन से अपराध का निष्कर्ष आसानी से निकल सकता है। न्यू साउथ वेल्स आयोग ने अपनी रिपोर्ट में निम्नलिखित रूप में सिफारिश की है :

''आयोग सिफारिश करता है कि साक्ष्य अधिनियम 1995 (न्यू. सा. वे.) धारा 20 (2) में अभियोजन पक्ष द्वारा टिप्पणी करने पर लगाए गए प्रतिबंध को हटा दिया जाना चाहिए। अभियोजकों को इस तथ्य पर टिप्पणी करने की अनुमति होनी चाहिए कि प्रतिवादी ने साक्ष्य नहीं दिया है किन्तु यह बात उन निर्बंधनों के अधीन रहते हुए होनी चाहिए जो विचारण न्यायाधीश और प्रतिवादी के अधिवक्ता तथा किसी अभियुक्त द्वारा टिप्पणी करने पर लागू होती है। अभियोजन से टिप्पणी करने से पूर्व अनुमति के लिए आवेदन करने की अपेक्षा की जानी चाहिए।''

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि हमारी यह राय है कि उपरोक्त प्रक्रिया एक उचित प्रक्रिया नहीं है। हमारी राय में, आस्ट्रेलिया में अभियोजन संबंधी विधि आई.सी.पी.आर. द्वारा विहित न्यूनतम मानकों के अनुरूप नहीं है। दुर्भाग्यवश अभियुक्त के बोलने के अधिकार को भी समाप्त कर दिया गया है।

अब हम अमरीका और कनाडा की विधि का उल्लेख करेंगे जो कि अभियुक्त के मौन के अधिकार के पूर्ण रूप से पक्ष में है।

यू.एस.ए.

यूनाइटेड स्टेट्स में पांचवां संशोधन अपने विरुद्ध साक्ष्य के प्रतिषेध के मौलिक अधिकार से संबंधित है और उसकी भाषा लगभग वही है जो हमारे संविधान के अनुच्छेद 20(3) की है। वास्तव में, 1878 का एक संघीय कानून है जो यह घोषित करता है कि अभियुक्त अपनी ओर से साक्ष्य देने के लिए सक्षम होगा किन्तु ऐसा करने में उसकी असफलता से उसके विरुद्ध कोई निष्कर्ष नहीं निकाले जाएंगे। प्रारंभ में, ऐडम सन बनाम केलीफोर्निया (1947) 332 यू.एस. 46 में मौन के अधिकार से संबंधित प्रश्न पर विचार किया गया था। बहुमत ने पांचवें संशोधन का कोई उल्लेख नहीं किया है किन्तु अल्पमत ने पांचवें संशोधन का उल्लेख करते हुए निर्णय दिया कि अमेरिका में मौन का अधिकार सम्पूर्ण अधिकार था। तदन्तर, ग्रिफिन बनाम केलीफोर्निया (1965) 380 यू.एस. 609 में, यू.एस. सुप्रीम कोर्ट ने प्रतिवादी द्वारा अपने पक्ष में ''स्टेण्ड'' पर आने से इंकार के बारे में जूरी को अभियोजक अथवा न्यायाधीश द्वारा टिप्पणी करने की अनुमति देने से इंकार कर दिया था क्योंकि ऐसी टिप्पणी ''संवैधानिक विशेषाधिकार का प्रयोग करने पर न्यायालयों द्वारा अधिरोपित दण्ड'' था और यह उसके उपयोग को मूल्यवान बनाकर ''विशेषाधिकार में कटौती करता है''। ऐसी शास्ति पांचवें संशोधन द्वारा प्रतिवादी को उपलब्ध दोष स्वीकार न करने के अधिकार के स्थगन को ''अनावश्यक रूप से प्रोत्साहित करती है''। न्यायालय ने उल्लेख किया है कि प्रतिवादी को इस बात का पूरा अधिकार है तथा यदि प्रतिवादी अपने मौन के अधिकार का प्रयोग करता है तो अपराध की बाबत कोई विपरीत निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। निर्दोष अपराधी ''स्टेण्ड'' पर आने से बच सकता है क्योंकि उसे ऐसा लग सकता है कि वह अनुभवी अभियोजक की तुलना में विधि से अनभिज्ञ होने के कारण बुरा प्रदर्शन कर सकता है और अभियोजन न्यायालयों को शासित करने वाले कृत्रिम नियमों में माहिर होने के कारण उसकी दुर्दशा कर सकता है।

तथापि अमरीकी न्यायालयों ने एक भिन्न सिद्धांत का कथन किया है, अर्थात्, यह कि किसी पश्चवर्ती अनुक्रम में अभियुक्त के मौन को न्यायालय दण्ड की मात्रा को निश्चित करते समय विचार में ले सकता है। ऐसे प्रश्न सौदा अभिवाक् के दौरान उठते हैं। न्यायालय ने कहा कि 'सजा के प्रश्न' के प्रत्युत्तर में 'स्टेण्ड' पर आने का दबाव उतना बड़ा नहीं है जिससे कि अपने विरुद्ध साक्ष्य के प्रतिषेध संबंधी अनुच्छेद में निहित नीति नष्ट हो जाए। इसी प्रकार से प्रतिवादी द्वारा एलीबाई अभिवाक् की बाबत नोटिस स्वयं के विरुद्ध साक्ष्य देने के प्रतिषेध के अधिकार पर प्रभाव नहीं डालता। ''द कान्सटीट्यूशन आफ दि क्रिमिनल प्रोसीडिंग (लेखक प्रो. अखिल कुमार, येल यूनिवर्सिटी, यू.एस.ए.)''।

मिरान्डा बनाम अरिजोना में भी (1966) 384 यू.एस. 436 यह निर्णय दिया गया था कि पुलिस को संदिग्ध व्यक्ति को चेतावनी देनी होगी और संदिग्ध को मौन रहने का अधिकार है। उसे, इसके अतिरिक्त, पूछताछ के दौरान अधिवक्ता की उपस्थिति का भी अधिकार है। इस बात पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है कि यू.एस. सुप्रीम कोर्ट ने कहीं भी यह कथन नहीं किया है कि अभियुक्त के मौन के कारण कोई विपरीत निष्कर्ष निकाला जा सकता है अथवा मौन को अपराध के निष्कर्ष का समर्थन करने के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

कनाडा

आगे हम कनाडा की सुप्रीम कोर्ट द्वारा आर बनाम नोविल (1997)(1) एस सी आर 874 में दिए गए निर्णय का उल्लेख करेंगे। इस मामले में बहुमत ने निर्णय दिया कि मौन का अधिकार सम्पूर्ण अधिकार है तथा अभियुक्त के मौन से न तो उसके विरुद्ध कोई विपरीत निष्कर्ष निकाला जा सकता है और न उसका प्रयोग अपराध को संदेह के परे स्थापित करने के प्रयोजन के लिए किया जा सकता है।

कनाडा के चार्टर आफ राइट्स एण्ड फ्रीडम्स की धारा 11(ग) में यह उपबंध है कि ऐसे किसी व्यक्ति को, जिस पर अपराध का आरोप है, यह अधिकार है कि उसे किसी अपराध की बाबत उसके विरुद्ध कार्यवाही में साक्षी बनने के लिए बाध्य नहीं किया जा सकता। चार्टर की धारा 7 में यह उल्लेख भी है कि हर व्यक्ति को व्यक्तिगत जीवन,स्वातंत्र्य और सुरक्षा का अधिकार है और यह अधिकार भी उसे इस अधिकार से मौलिक न्याय के सिद्धांत के

22 LJ&CA/05-6

अनुसार के सिवाए वंचित नहीं किया जा सकता। धारा 11(घ) में निर्दोषिता की परिकल्पना और न्यायोचित विचारण के अधिकार के कॉमन विधि के सिद्धांत को कानूनी रूप दिया गया है।

कनाडा के एवीडेन्स एक्ट, 1985 की धारा 4(6) निम्नलिखित प्रकार से है :—

''धारा 4(6). आरोपित व्यक्ति अथवा उस व्यक्ति की पत्नी या पति की गवाही देने में असफलता पर न्यायाधीश या अभियोजन पक्ष का वकील कोई टिप्पणी नहीं करेगा।''

उपरोक्त मामले में बहुमत का निर्णय न्यायाधीश सोपिन्का द्वारा सुनाया गया था और उनका कथन था कि मौन का अधिकार न्याय का एक मौलिक सिद्धांत है जिसे कनाडा के चार्टर की धारा 7 में सम्मिलत किया गया है तथा धारा 11(ग) में उल्लेख है कि कोई व्यक्ति अपने विरुद्ध साक्षी होने के लिए बाध्य नहीं किया जाएगा। बहुमत ने आर बनाम हेवर्ट 1990 (2) एस सी आर 151 का उल्लेख किया जिसमें यह निर्णय दिया गया था कि गिरफ्तारी, आरोप या निरोध की दशा में मौन का अधिकार प्राप्त था अन्यथा राज्य किसी निरुद्ध अपराधी को अपने विरुद्ध दोषी होने का वक्तव्य देने की चालाकी, पुलिस कार्यालय के कवर का प्रयोग करते हुए तथा राज्य की बल प्रयोग की शक्ति का प्रयोग करके किसी अभियुक्त से बंदीगृह में सूचना उगलवा सकती थी। मौन का अधिकार, जो कि अभियुक्त में निहित है, अभियुक्त के ज्ञानपूर्ण निर्णय पर ही छोड़ा जा सकता है। न्यायालय ने आर बनाम चैम्बर्स 1990 (2) एस सी आर का भी उल्लेख किया जिसमें यह अभिकथित है कि एक ओर अभियुक्त को इस बात से सतर्क करना कि उसे पुलिस अधिकारी के प्रश्न के उत्तर में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है और दूसरी ओर साक्ष्य में यह कहना कि अभियुक्त ने मौन रहने के अधिकार का प्रयोग किया है और ऐसे मौन से अपराध का संकेत मिलता है, एक धोखा और भ्रम होगा। न्यायालय ने आर बनाम एमवे कोरपोरेशन 1989 (1) एम सी आर पृष्ठ 21, का भी उल्लेख किया जिसमें यह निर्णय लिया गया था कि अभियुक्त के मौन का उपयोग उसके अपराध के अवधारण के लिए नहीं किया जा सकेगा। उपरोक्त निर्णयों के संदर्भ में न्यायाधीश सोपिन्का ने निम्नलिखित कथन किया :

''.......... मौन का उपयोग अपराध को संदेह से परे सिद्ध करने में सहायक होने के लिए करना मौन के अधिकार के पीछे जो औचित्य है उसके विपरीत है। जिस प्रकार से किसी व्यक्ति के शब्दों को राज्य द्वारा उसके विरुद्ध उपयोग में नहीं लाना चाहिए उसी प्रकार से यह अभियुक्त के स्वाभिमान के विपरीत है कि उसके मौन का उपयोग किसी तथ्य को संदेह से परे सिद्ध करने में सहायता देने के लिए किया जाए। मौन का इस प्रकार से उपयोग अपराध के साक्ष्य के रूप में उपयोग के समान होगा.....................। साक्ष्य देने में असफलता से अभियुक्त की स्थिति वही हो जाती है जो तब होती जब उसने साक्ष्य न दिया होता तथा अपना अपराध स्वीकार कर लिया होता।''

बहुमत ने यह निर्णय भी दिया कि धारा 11(घ) अभियुक्त को तब सुरक्षा प्रदान करती है जब वह यह उपबंध करती है कि अभियुक्त के मौन को उसके विरुद्ध साक्ष्य की तुला पर नहीं रखा जा सकता। निर्दोषिता की परिकल्पना यह संकेत देती है कि अभियुक्त कोई भी साक्ष्य प्रस्तुत करने के लिए बाध्य नहीं है। यदि राज्य मामले को संदेह से परे सिद्ध कर देता है तो अभियुक्त के मौन का उल्लेख स्पष्टीकरण न दिए जाने के साक्ष्य के रूप में किया जा सकता है, जो एक उचित संदेह की स्थिति पैदा करता है। वास्तव में, ऐसी स्थिति में, अभियुक्त को साक्ष्य देने की आवश्यकता नहीं है और यदि वह साक्ष्य नहीं देता है तो राज्य मामला सिद्ध करने में सफल हो जाएगा और अभियुक्त को सजा होगी। एक बार राज्य किसी मामले को संदेह से परे साबित कर देता है तब ही इस बात का सही अर्थ निकलेगा कि अभियुक्त को ''प्रत्युत्तर देने की आवश्यकता नहीं है''। यदि मौन पर विचार अपराध सिद्ध हो जाने के पश्चात् किया जाता है तो इससे न तो मौन के अधिकार पर और न निर्दोषिता की परिकल्पना पर कोई आघात पहुंचता है। न्या. सोपिन्का ने निम्नलिखित उल्लेख भी किया है :

''मौन के अधिकार का और उसमें निहित तर्क का सम्मान इस बात के कारण है कि संसूचना का या संसूचना के अभाव का उपयोग अभियुक्त के विरुद्ध मामला स्थापित करने के लिए नहीं किया जाए। अभियुक्त के मौन का

उपयोग उसे फंसाने के साक्ष्य के रूप में नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि यह मौन के अधिकार के विरुद्ध होगा और ऐसा उपयोग निर्मुक्ति का साक्ष्य मात्र नहीं होगा। इसके अतिरिक्त निर्दोषिता की परिकल्पना का सम्मान इस कारण है कि अभियुक्त अपनी प्रतिरक्षा के लिए अथवा अपने मौन के आधार पर दोषसिद्ध होने की संभावना का समाना करने के लिए बाध्य नहीं है। तथ्यों पर विचार करने वाला व्यक्ति मौन का उल्लेख स्पष्टीकरण के अभाव मात्र के रूप में कर कर सकता है और निर्णय पर पहुंचने के लिए उसे विचार में ले सकता है। दूसरी ओर, यदि साक्ष्य में कोई उचित स्पष्टीकरण है अथवा ऐसा निष्कर्ष निकलता है जो दोष के उचित संदेह से परे होने का निष्कर्ष निकालने में समर्थ है तो मौन का उपयोग ऐसे स्पष्टीकरण को खारिज़ करने के लिए नहीं किया जा सकता।''

बहुमत ने आर बनाम फ्रेंकोइस 1984 (2) एस सी आर 827 तथा आर बनाम लेपेज 1995 (1) एस सी आर 654 के निर्णयों का उल्लेख करते हुए यह भी कहा है कि—

''यद्यपि साक्ष्य देने में असफलता से यह निष्कर्ष निकालने की अनुमति है कि कोई अनकहा, निर्दोष स्पष्टीकरण ऐसा नहीं है जिसके बारे में तथ्य पर विचार करने वाले न्यायालय को अनुमान लगाने चाहिएं; मौन का उउपयोग मामले को मजबूत करने के लिए उस दशा में करने की अनुमति नहीं है जब मामले को अन्यथा संदेह के परे सिद्ध करने मे कोई कमी हो। यदि साक्ष्य कुल मिलाकर अपराध को संदेह से परे सिद्ध करता है तो अभियुक्त को मौन 'कोई अन्य निष्कर्ष निकालने का आधार प्रदान करने में असफल होगा'।''

न्यायाधीश सोपिन्का ने यह कथन भी किया है कि मौन न तो दोषसिद्ध करता है और न दोष से मुक्ति प्रदान करता है। तथापि मौन, अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर स्वतंत्र रूप से पहले ही निकाले गए अपराध के निर्णय की पुष्टि कर सकता है। मौन यह संकेत दे सकता है कि अभियुक्त ने अपराध को संदेह से परे सिद्ध करने के लिए अभियोजन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के विरुद्ध अथवा उसे नकारने के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं दिया है या साक्ष्य प्रस्तुत नहीं किया है। मौन का उपयोग केवल इसी सीमित अर्थ में किया जा सकता है। किन्तु यदि कोई ऐसा उचित स्पष्टीकरण है जो निर्दोषिता से संगत है और जिससे कोई उचित संदेह पैदा हो सकता है तब मौन का उपयोग ऐसे संदेह के निवारण के लिए नहीं किया जा सकता। मौन का उपयोग केवल तब स्वीकार्य है जब तथ्य के विचारक ने अपराध किए जाने का संदेह से परे सिद्ध होने का निष्कर्ष निकाल लिया हो और ऐसी दशा में मौन वास्तव में ''अर्थहीन'' है। अंत में न्यायाधीश सोपिन्का ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाला है :—

''अत: मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि न्यायालयों को सामान्यतया अभियुक्त के मौन की चर्चा करते समय अत्यन्त भ्रमपूर्ण शब्द ''निष्कर्ष'' का प्रयोग करने से बचना चाहिए। ''निष्कर्ष'' का यह अर्थ लगाया जा सकता है कि तथ्य के विचारक ने मौन का उपयोग मामले या अपराध के संदेह से परे सिद्ध करने में सहायक के रूप में किया है क्योंकि मौन का इस प्रकार से उपयोग करने की अनुमति नहीं है। वास्तव में, अभियुक्त के मौन की चर्चा करने से सामान्यतया बचना चाहिए क्योंकि वह अत्याधिक भ्रम पैदा कर सकता है। फिर भी, जहां विचारण न्यायाधीश मौन का उल्लेख साक्ष्य की समग्रता को ध्यान में रखकर अपराध की पुष्टि करने वाले तथ्य के रूप में करता है न कि 'वजनदार कारण' के रूप में, तो वहां यह ऐसी भूल नहीं है जिसे सुधारा न जा सके''।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि कनाडा के दृष्टिकोण से यह एक कानूनी भूल होगी यदि न्यायालय जूरी को अभियुक्त के मौन पर विचार करने का निर्देष अभियुक्त के अपराध के बारे में निर्णय करने के लिए देता है। दूसरी ओर, हम देख चुके हैं कि इंग्लिश दृष्टिकोण तथा विशेषरूप से यूरोपीय न्यायालयों का दृष्टिकोण कोन्ड्रान के मामले में सर्वथा विपरीत है। वहां यह निर्णय दिया गया है कि जूरी को अभियुक्त के अपराध के बारे में निर्णय तक पहुंचने के लिए मौन को विचार में लेने के लिए निर्देश दिया जा सकता है।

चीन

इस बात पर ध्यान देना अत्यन्त मनोरंजक है कि चीन में जो अद्यतन नीति है वह मौन के अधिकार को वहां के दाण्डिक न्यायशास्त्र में समावेश करने की है। हाल ही में, शैनयांग, दलियान और अन्य नगरों की प्रोक्यूरेटरों में ऐसा विनियम लागू किया गया है।

'राइट टू साइलेन्स इन चाइनाज ज्यूडिशियल सिस्टम' विषय पर निम्नलिखित विचार (जो चाइना डेली तारीख 23-11-2000 में हैं) ध्यान देने योग्य हैं। (देखिए एच टी टी पी//डब्ल्यू डब्ल्यू डब्ल्यू, चाइना, ओ आर जी. सी एन/ इंग्लिश/2000/नवम्बर)

"प्राक्यूरेटरों को चाहिए कि दाण्डिक मामलों में संदिग्ध व्यक्तियों को सबूत के आधार पर अभियोजित करें न कि दोष की स्वीकारोक्ति के आधार पर जैसा कि उत्तरपूर्वी चीन के लियानिंग प्रोविन्स की फूशुन की प्रोक्यूरेटर ने एक नए जारी किए गए विनियम द्वारा घोषित किया है। यह विनियम जनसाधारण को मौन के अधिकार की गारंटी प्रदान करता है और संदिग्धों को आरोपों के विरुद्ध अपनी प्रतिरक्षा करने का और दाण्डिक पूछताछ के दौरान मौन रखने का हक देता है।

चीन की न्याय प्रणाली में पहली बार संदिग्धों के मौन रहने के अधिकार को शासकीय रूप से स्वीकार किया गया है और उस देश में मानव अधिकार की सुरक्षा और जनसाधारण की स्वतंत्रता की दिशा में प्रगति का सूचक है।

उक्त विनियम के अनुसार, विधि अधिकारी दोष स्वीकारोक्ति को कोई स्थान नहीं देंगे और, जैसा कि लियानिंग प्रोविन्शियल पीपुल्स प्रोक्यूरेटरेट के अनुसंधान कार्यालय के अनुसंधानकर्ता यांग जियाडांग ने स्पष्ट किया है, दोष सिद्धि अन्य अव्यक्तिपरक और विश्वास योग्य सबूत पर आधारित होगी।

व्यक्तिपरक होने पर भी, दोषस्वीकारोक्ति को चीन में दाण्डिक मामलों के विचारण में सबूत के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में स्वीकार किया गया है। जियांग के अनुसार इससे मानव स्वाभिमान तथा आत्मिक स्वतंत्रता के प्रति सम्मान प्रकट होता है।

उक्त विनियम में व्यावहारिक रूप से निर्दोषिता की परिकल्पना को स्वीकार किया गया है और इसके परिणामस्वरूप, जैसा कि यांग का कथन है, देश की न्याय प्रणाली के परम्परागत स्वरूप में एक महान परिवर्तन आया है।

निर्दोषिता की परिकल्पना का अर्थ है कि संदिग्ध को पूछताछ आरम्भ करते समय निर्दोष माना जाएगा और तब तक सजा नहीं दी जाएगी जब तक कि उसका अपराध साबित करने का प्रमाण न हो। बीजिंग विश्वविद्यालय से पी एच डी की डिगरी प्राप्त एक वकील जियांग श्यांग ने कहा है कि निर्दोषिता की परिकल्पना तथा मौन के अधिकार को लागू करने से कुछ वास्तविक अपराधी सजा से बच सकते हैं किन्तु निर्दोष व्यक्तियों की रक्षा के लिए न्याय प्रणाली को यह कीमत चुकानी होगी।

देश के सर्वोच्च विधानमण्डल, अर्थात्, नेशनल पीपुल्स कांग्रेस तथा पत्र जगत ने न्यायिक औचित्य की ओर सदैव ध्यान दिया है। चीन के शीर्ष नेताओं ने अनेक बार यह प्रण भी लिया है कि वे न्याय प्रणाली में व्याप्त गैर कानूनी कार्यों पर अंकुश लगाएंगे।

अभी तक मौन के अधिकार के सिद्धांत का प्रवेश और क्रियान्वयन प्रोविन्स के केवल सेयांग डालियान तथा अन्य नगरों के प्रोक्यूरेटरों में ही हुआ है।

डलियान इन्टरमिडिएट पीपुल्स कोर्ट के न्यायाधीश सेन जी ने कहा है कि यद्यपि मौन का अधिकार अभी चीन में आरम्भिक अवस्था में है किन्तु इससे देश की न्याय प्रणाली में नए सिद्धांतों की एक शृंखला प्रारम्भ होगी। चीन नागरिकों के अधिकारों और हितों की व्यापक रक्षा और न्यायिक औचित्य सुनिश्चित करने की दशा में चीन अपनी न्यायाप्रणाली में सुधार करता रहा है।

चीन ने 1996 में एक नयी दण्ड विधि आरम्भ की और अवैध विशेषाधिकारों को समाप्त करने की ओर ध्यान देते हुए तथा नागरिकों के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए 1997 में उस विधि में संशोधन किए हैं।

1998 में चीन ने संयुक्त राष्ट्र संघ के इन्टरनेशनल कवेनांट आन सिविल एंड पोलीटिकल राइट्स में भाग लिया जो कि अपने विरुद्ध साक्ष्य के प्रतिषेध के अधिकार की गारंटी प्रदान करता है।"

(चाइना डेली 11/23/2000)

भारत :

भारत के संदर्भ में, भारत के संविधान के अनुच्छेद 20 का खण्ड (3) स्वविरोधी साक्ष्य के प्रतिषेध के मूल अधिकार की गारंटी प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त अनु. 21 में जीवन और स्वातंत्र्य का मूल अधिकार प्रदान किया गया है और कहा गया है कि किसी भी व्यक्ति को उसकी स्वतंत्रता से विधि द्वारा अधिकथित प्रक्रिया के अनुसार के सिवाए वंचित नहीं किया जा सकता। मेनका गांधी के मामले में यह निर्वचन भी किया गया था कि अनु. 21 में वर्णित प्रकिया वह प्रक्रिया है जो न्यायोचित, भेदभाव रहित और साम्यपूर्ण होनी चाहिए।

दण्ड प्रक्रिया संहिता में अनेक रक्षोपाय हैं। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 161 की उपधारा (2) पुलिस द्वारा पूछताछ के दौरान मौन का अधिकार प्रदान करती है। यह उपबंध निम्नलिखित रूप में है :—

"धारा 161(2), ऐसा व्यक्ति उन प्रश्नों के सिवाए, जिनके उत्तरों की प्रवृत्ति उसे आपराधिक आरोप या शस्ति या समपहरण की आशंका में डालने की है, ऐसे मामले से संबंधित उन सब प्रश्नों का सही-सही उत्तर देने के लिए आबद्ध होगा जो ऐसा अधिकारी उससे पूछता है।"

धारा 313 की उपधारा (3) भी विचारण के दौरान इस मौन अधिकार को सुरक्षित करती है यह निम्नलिखित शब्दों में है :

"313(3), अभियुक्त ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने से इंकार करने से या उसके मिथ्या उत्तर देने से दण्डनीय न हो जाएगा।"

धारा 315 की उपधारा (1) में एक परन्तुक है और उस परन्तुक का खण्ड (ख) अभियुक्त द्वारा साक्ष्य देने में असफलता की बाबत किसी भी पक्षकार को या न्यायालय को कोई टिप्पणी करने से प्रतिषिद्ध करता है। यह खण्ड निम्नलिखित रूप में है :

"परन्तु-

(क)..........................

(ख) उसका स्वयं साक्ष्य न देना पक्षकारों में से किसी के द्वारा या न्यायालय द्वारा किसी टीका-टिप्पणी का विषय न बनाया जाएगा और न उसे उसके, या उसी विचारण में उसके साथ आरोपित किसी व्यक्ति के, विरुद्ध कोई उपधारणा ही की जाएगी।"

उक्त परन्तुक अपराध के विरुद्ध परिकल्पना भी सृजित करता है।

दूसरे शब्दों में, धारा 161, 313 और 315 में अपराध के विरुद्ध और निर्दोषिता के पक्ष में परिकल्पना की गई है, अन्वेषण और विचारण के प्रक्रमों पर मौन का अधिकार प्रदान किया गया है तथा किसी भी पक्षकार या न्यायालय को मौन के संबंध में टिप्पणी करने से प्रतिषिद्ध किया गया है। यह उससे सर्वथा विपरीत है जो आस्ट्रेलिया की विधि द्वारा अनुमत है। आस्ट्रेलिया की विधि के अंतर्गत न्यायालय मौन के बारे में टिप्पणी कर सकता है किन्तु अभियोजक कोई टिप्पणी नहीं

22 LJ&CA/05-7

कर सकता। न्यू साउथ वेल्स विधि आयोग ने, जैसा कि पहले कहा जा चुका है, विधि में संशोधन करने की सिफारिश की है जिससे कि अभियोजन पक्ष को भी अभियुक्त के मौन के बारे में टिप्पणी करने की अनुमति प्रदान की जाए।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 के रूप में हमारी विधि संविधान के अनुच्छेद 20 के खण्ड (3) तथा अनुच्छेद 21 से संगत है।

दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 के अंतर्गत इन उपबंधों का पूर्वतर इतिहास बहुत कुछ प्रकट करता है। श्री दुर्गादास बसु ने संविधान के अनुच्छेद 20 पर अपनी टिप्पणी में इस पक्ष का उल्लेख किया है। (देखिए सिलवर जुबली संस्करण भाग-डी पृष्ठ 46-47)। दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1898 की धारा 324क, जो 1955 में पुर:स्थापित की गई थी, अभियुक्त को अपनी ओर से साक्ष्य देने में समर्थ बनाता है तथा उसमें यह कथन भी है कि "साक्ष्य देने में उसकी असफलता किसी भी पक्षकार द्वारा अथवा न्यायालय द्वारा टिप्पणी का विषय नहीं होगी।" तथापि उक्त संहिता की धारा 342 की उपधारा (2) में एक उपबंध है जो उपरोक्त प्रतिषेध के विरुद्ध है और निम्नलिखित रूप से है :—

> "धारा 342(2). अभियुक्ता प्रश्नों के उत्तर देने से इंकार करने के कारण अथवा उनके झूठे उत्तर देने के कारण किसी सजा का दायी नहीं होगा, किन्तु न्यायालय और जूरी (यदि कोई है) ऐसे इंकार से या उत्तरों से ऐसे निष्कर्ष निकाल सकते हैं जैसे वह ठीक समझे।"

यह ध्यान देने योग्य है कि पुरानी संहिता की धारा 342(2) में उक्त रेखांकित शब्द अभियुक्त के मौन से निष्कर्ष निकालने की अनुमति प्रदान करते हैं किन्तु 1973 की संहिता में इस उपबंध की पुनरावृत्ति नहीं की गई है और उसे स्पष्टतया 1950 में प्रवृत्त भारत के संविधान के अनु. 20 के खण्ड (3) के अधीन दी गई गारंटी के कारण छोड़ दिया गया है। सम्भवत: यह उपबंध इसीलिए नहीं रखा गया क्योंकि वह स्वविरोधी साक्ष्य देने के प्रतिषेध को रक्षा प्रदान करने वाले संवैधानिक उपबंध के विरुद्ध था। वास्तव में, श्री बसु ने संकेत दिया है (उक्त पृष्ठ 46) कि 1898 की संहिता में "उपर उल्लिखित कमी" के बारे में लेखक ने संविधान के पूर्वतर संस्करण के भाग 2 में पृष्ठ 38 पर निम्नलिखित टिप्पणी दी थी :

> "लेखक को ऐसा प्रतीत होता है कि विधान मण्डल ने 1955 में धारा 342क जोड़ते समय रेखांकित शब्दों का लोप भूल से नहीं किया था; क्योंकि, धारा 342 क जोड़ने के पश्चात् उक्त रेखांकित शब्द निश्चित रूप से परस्पर विरोधी हैं। वे धारा 342 क के परन्तुक (ख) से असंगत हैं; क्योंकि, दोनों धाराओं, अर्थात् धारा 342 और 342 क का उद्देश्य, जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है, अभियुक्त को ऐसी किसी बात को स्पष्ट करने का अवसर प्रदान करना है जो साक्ष्य में उसके विरुद्ध है और उसे फंसाती है। अत: यदि धारा 342 क के अंतर्गत प्रदत्त अवसर का लाभ लेकर अपनी ओर से साक्ष्य देने के अवसर का लाभ लेने में अभियुक्त असफल रहता है तो उससे कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता और ऐसा निष्कर्ष निकालने की अनुमति क्यों होनी चाहिए जबकि न्यायालय उससे उसी प्रयोजन के लिए प्रश्न करता है?"

> "उपरोक्त कानूनी तर्क के अतिरिक्त,-एक संवैधानिक उलझन भी है यदि हम **एडमसन** बनाम **कैलिफोर्निया** 1947 332 यू. एस. 46 में असहमत न्यायाधीशों द्वारा दिए गए वक्तव्यों पर ध्यान दें····यदि आप अभियुक्त को स्वयं अपने विरुद्ध वक्तव्य देने के लिए बाध्य नहीं कर सकते तो आप उसके मौन रहने के कारण उसके विरुद्ध कोई निष्कर्ष भी नहीं निकाल सकते क्योंकि ऐसा करने से तो वह मौन रहने की अपेक्षा स्पष्टतया बोलने के लिए बाध्य हो जाएगा।"

> "गवाही देने से इंकार से विपरीत निष्कर्ष निकालना वास्तव में उस व्यक्ति को दण्ड देना है जो अनु. 20(3) के अंतर्गत अपने अधिकार का प्रयोग करना चाहता है। इस तथ्य से कि अभियुक्त अनु. 20 (3) के परित्राण का आश्रय ले रहा है कि जिस प्रकार उसके दोष का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता उसी प्रकार से केवल इस तथ्य से उसके अपराध का निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि उसने उत्तर देने से या वक्तव्य देने से इंकार किया है।"

श्री बसु का अब यह कथन है (सिलवर जुबिली संस्करण भाग-डी पृष्ठ 47) कि इस बात से बड़ी प्रसन्नता है कि मेरे पूर्वतर संस्करण में की गई उपरोक्त टिप्पणियों को ध्यान में रखकर विधान मण्डल ने 1973 के अधिनियम को पुर:स्थापित करते समय 1858 के पुराने अधिनियम की धारा 340(2) के अंतिम भाग में आये हुए शब्दों का लोप कर दिया।

श्री बसु कहते हैं :—

"अत: अब यह स्पष्ट है कि न्यायालय अभियुक्त के मौन से या न्यायालयों के प्रश्नों का उत्तर देने से इंकार करने से, किन्ही भी परिस्थितियों में, कोई निष्कर्ष अभियुक्त के विरुद्ध नहीं निकाल सकता।"

"मौन के अधिकार पर भारत के उच्चतम न्यायाधीशों की पीठ ने **नंदिनी सत्पथी बनाम पी. एल.दानी** 1978 (2) एस.सी.सी. 424 में विचार करते हुए पूर्वतर अंग्रेजी विधि का तथा अमरीका की सुप्रीम कोर्ट द्वारा **मिरांडा** में दिए गए निर्णय का अनुसरण किया। न्या. कृष्णा अय्यर ने उल्लेख किया कि अभियुक्त अपना मुंह बद रखने और ऐसे किन्हीं भी प्रश्नों का उत्तर न देने का हकदार था यदि ऐसे प्रश्नों से उसका अपराध प्रकट होने की संभावना हो। यह परित्राण ऐसे विचारण के पूर्व भी और विचारण के दौरान भी उपलब्ध था।" विद्वान् न्यायाधीश ने निम्नलिखित टिप्पणी की है :—

> "............ यदि हम टाल म्यूडिक विधि पर अथवा मेग्नाकार्टा पर या अन्य संविधानों के उपबंधों पर अथवा अनु. 20(3) पर विचार करें तो स्वविरोधी साक्ष्य बलपूर्वक प्राप्त करने के पीछे सशक्त कारण अत्याचार की प्रणाली है जैसा कि अन्वेषण कर्त्ताओं ने और न्यायालयों ने मध्य युग से लेकर आधुनिक युग तक माना है। विधि जीवन का प्रत्युत्तर है तथा अपराधी को प्राप्त मौन का विशेषाधिकार का उद्‌गम, जो कि इंग्लिश नियम है, कोर्ट ऑफ स्टार चैम्बर के प्रति तीव्र प्रतिक्रिया से आसानी से देखा जा सकता है जब स्वविरोधी साक्ष्य को अवैध नहीं माना जाता था। वास्तव में, जैसी कि होल्ड बर्थ ने टिप्पणी की है, दाण्डिक प्रक्रियाओं की मुख्य बात अभियुक्त की परीक्षा थी।"

सारांश :

विभिन्न देशों में प्रचलित विधि के सर्वेक्षण से यह प्रकट होता है कि यू.एस.ए., कनाडा और भारत में, स्वविरोधी साक्ष्य के प्रतिषेध के संवैधानिक उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए न्यायालय अभियोजन पक्ष से अपेक्षा करते हैं कि अपराध को युक्तियुक्त संदेह के परे सिद्ध करें और संदिग्ध व्यक्ति या अभियुक्त में निहित मौन के अधिकार का कोई उल्लंघन न करें चाहे वह पूछताछ के प्रक्रम में हो अथवा विचारण के दौरान। केवल यू.के. में हाल ही में कुछ विचलन हुआ है। 1994 की यू.के. की विधि की अभी कोई परीक्षा ह्यूमेन राइट्स एक्ट, 1998 की कसौटी पर नहीं हुई है। नि.संदेह, दो मामले यूरोपीय न्यायालय के समक्ष आए थे और उक्त न्यायालय ने ऐसी कुछ शर्तें अधिकथित की हैं जिन्हें न्यायालय या जूरी को अभियुक्त के मौन पर विचार करने से पूर्व संतुष्ट करना होगा। सर्वप्रथम अभियोजन को अपराध के बारे में प्रथमदृष्ट्या मामला स्थापित करना होगा। दूसरी बात यह कि संदिग्ध या अभियुक्त को पूछताछ के समय अपने वकील को बुलाने का अवसर अवश्य प्रदान करना चाहिए। इसी के कारण 1999 में यू.के. की विधि में और संशोधन किया गया है जो संदिग्ध या अभियुक्त को सहायता के लिए अपने वकील को बुलाने की अनुमति प्रदान करता है। लेकिन कुछ नई समस्याएं तब खड़ी हुई जब अभियुक्त ने अपने वकील द्वारा दी गई मौन रखने की सलाह का आश्रय लिया। ऐसे मामलों में, न्यायालय अभियुक्त की और उसके वकील की भी प्रतिपरीक्षा करने लगे हैं। वकील की गलत सलाह से अभियुक्त पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है और इसकी इजाजत नहीं दी जा सकती। उपरोक्त उलझनों की पृष्ठभूमि में, दाण्डिक विचारण और अधिक उलझनपूर्ण हो गए हैं तथा अभियुक्त के पास अपराधी होने के निर्णय पर प्रश्न चिन्ह लगाने के और अधिक आधार खड़े हो गए हैं। हमारी राय में, अत: इस बात में बुद्धिमानी नहीं होगी कि हमारी प्रणाली में भी उसी प्रकार के परिवर्तन किए जाएं। वास्तव में, न्यू साउथ वेल्स के विधि आयोग ने स्पष्ट रूप से यह सिफारिश की है कि धारा 34, 36 और 37 जैसे उपबंध, जो न्यायालय को या जूरी को संदिग्ध या अभियुक्त के मौन से निष्कर्ष निकालने

की अनुमति प्रदान करते हैं, न्यू साउथ वेल्स के कानून में नहीं जोड़े जाने चाहिएं। किन्तु, दुर्भाग्यवश, न्यू साउथ वेल्स के विधि आयोग ने सिफारिश की है कि अभियुक्त को अपनी प्रतिरक्षा से संबंधित विभिन्न तथ्यों को प्रकट करने के लिए बाध्य किया जा सकता है और अभियोजक तथा न्यायालय उस पर टिप्पणी कर सकते हैं। हमारी दृष्टि में इससे विचारण उचित विचारण नहीं रह जाएगा और स्वविरोधी साक्ष्य के प्रतिषेध के अधिकर का भी अप्रत्यक्ष रूप से हनन होगा। आस्ट्रेलिया के न्यायालयों ने किन्हीं भी संवैधानिक प्रतिषेधों का उल्लेख नहीं किया है।

दूसरी ओर, अमरीका और कनाडा के न्यायालयों ने मौन के अधिकार के किसी भी प्रकार के उल्लंघन की अनुमति नहीं दी है। इंग्लिश और यूरोपीय न्यायालय तथा आस्ट्रेलिया के न्यायालय जूरी को तथा न्यायालयों को अपराध के युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध होने के निर्णय पर पहुंचने से पूर्व मौन पर विचार करने की अनुमति प्रदान करते हैं, हां, यह तब जब प्रथमदृष्ट्या मामला स्थापित हो जाए और अभियुक्त को वकील करने के उसके अधिकार की जानकारी दे दी जाए; अमरीका और कनाडा के न्यायालय अपराध के युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध होने का निर्णय लेने से पूर्व मौन पर विचार करने का प्रतिषेध करते हैं। जब न्यायालय अपराध का युक्तियुक्त संदेह से परे सिद्ध होने का निर्णय कर ले केवल तब ही अभियुक्त से यह पूछा जा सकता है कि क्या उसके पास कोई स्पष्टीकरण है।

यह मनोरंजक बात है कि चीन ने कुछ क्षेत्रों में एक विनियम लागू किया है जो अभियुक्त को मौन रहने का हक देता है। वास्तव में, यह अचरज की बात है कि जब चीन अपने कानूनों में इस सिद्धात को लागू कर रहा है तब यू.के. और आस्ट्रेलिया जैसे प्रजातंत्र मौन के अधिकार के बारे में पुरानी परम्परा से हटकर कानून बना रहे हैं।

भारत में विधि वैसी ही है जैसी कि यू. एस. ए. और कनाडा में है। अनु. 20 के खण्ड (3) के उपबंधों को तथा अनु. 21 के अंतर्गत उचित प्रक्रिया की अपेक्षा को और आई सी सी पी आर के, जिसमें भारत एक पक्षकार है, उपबंधों को दृष्टि में रखते हुए एवं यू. के. के न्यायालयों में जिन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है उनपर विचार करते हुए, हमारी यह दृढ़ धारणा है कि ऐसे कोई परिवर्तन करना, जैसे यू. के. में किए गए हैं, न केवल अव्यावहारिक होगा अपितु ऐसे परिवर्तन ऊपर उल्लिखित संवैधानिक सुरक्षोपायों के भी विपरीत होंगे। वास्तव में, दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 में किए गए परिवर्तन, उन कतिपय उपबंधों को छोड़कर जो कि 1898 की संहिता में थे, हमारे संविधान के अनु. 20 के खण्ड (3) और अनु. 21 के उपबंधों का परिणाम प्रतीत होते हैं।

हमने अन्य देशों की तथा भारत की विधियों का पुनरीक्षण यह परीक्षा करने के प्रयोजन के लिए किया है कि दण्ड प्रक्रिया संहिता, 1973 में कोई संशोधन आवश्यक है अथवा नहीं। इस पुनरीक्षण से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि अभियुक्त के मौन से संबंधित विधि में कोई परिवर्तन आवश्यक नहीं है और यदि किए जाते हैं तो वे भारत के संविधान के अनु. 20 (3) तथा अनु. 21 की दृष्टि से अवैध होंगे। हम तदनुसार सिफारिश करते हैं।

भवदीय,

ह०/-

(न्यायाधीश एम. जगन्नाथ राव)

अध्यक्ष

ह०/-

(डा. एन. एम. घटगे)

सदस्य

ह०/-

(टी. के. विश्वनाथन)

सचिव-सदस्य

9-5-2002

MGIPRRND—22 LJCA/05—75 Copies.

© Government of India
Controller of Publications

PLD.92.CLXXX (H)
75—2005 (DSK–IV)

Price :	Inland :	Rs.	1017.00
	Foreign :	$	22.04
		£	12.03

PRINTED BY THE MANAGER, GOVT. OF INDIA PRESS, RING ROAD, MAYAPURI, NEW DELHI-110064
AND PUBLISHED BY THE CONTROLLER OF PUBLICATIONS, DELHI-110054, 2006